कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

Year 13, Issue 52
Oct.-Dec., 2016

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

EDITOR-PUBLISHER : SNEH THAKORE - Awarded By The President Of India
Limka Book Record Holder

संपादन व प्रकाशन
स्नेह ठाकुर
भारत के राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत
लिम्का बुक रिकॉर्ड होल्डर

वर्ष १३ - अंक ५२, अक्टूबर-दिसम्बर २०१६

दीपावली संदेश

स्नेह ठाकुर

दीये से दीया जलाता चल
कर अपने मन में उजाला
दूसरों को उजाला देता चल
मन के तम को हरने वाला दीप जलाता चल
दीये से दीया जलाता चल

बना दे लौ की ऐसी पंक्ति संसार में
जगमगा उठे हर घर-द्वार
न टूटे कभी लौ की कड़ी
जलती रहे अविरल, अखण्ड
दीये से दीया जलाता चल

अमावस की इस रात को
बना दे तू पूनम की रात
न छोड़ना एक भी द्वार
जलाना हर चौखट पे प्यार की लौ
दीये से दीया जलाता चल

दीपावली की साँझ को
उठा ले तू बीड़ा निष्काम कर्म का
जला कर अपने मन का दीया
हर बुझे दीये को जलाता चल
हर चिराग़ में रोशनी करता चल
दीये से दीया जलाता चल

दीवाली है त्योहार विजयोल्लास का
अंधकार पर प्रकाश का
अज्ञानता पर ज्ञान का
बुराई पर अच्छाई का
अज्ञान-अंधकार हरने वाला
ज्ञान-दीप जलाता चल
औरों के प्रति सेवा भाव वाला
संकल्प-दीप जलाता चल
ईर्ष्या द्वेष मिटाने वाला
वात्सल्य-दीप जलाता चल
आत्म-स्वरूप ज्योतिर्मय करने वाला
प्रेम-दीप जलाता चल
ईश्वर के प्रति नत-मस्तक होने वाला
आभार-दीप जलाता चल

दीये से दीया जलाता चल
कर अपने मन में उजाला
दूसरों को उजाला देता चल
मन के तम को हरने वाला दीप जलाता चल
दीये से दीया जलाता चल
दीये से दीया जलाता चल।

वसुधा

संपादन व प्रकाशन : स्नेह ठाकुर

(भारत के राष्ट्रपति द्वारा "हिन्दी सेवी सम्मान" से सम्मानित)

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
संपादकीय		२
अँधकार ढल कर ही रहेगा	गोपाल दास नीरज	४
छद्म भिखारी	डॉ. कविता त्यागी	६
ढूँढता हूँ कुछ धुँध में	राजीव उपाध्याय	१३
अड़ी हुई टाँग	डॉ. नरेन्द्र कोहली	१४
दीपावली मंगलमय हो	प्रो. गिरीश्वर मिश्र	१५
रावण	डॉ. एम.एल. गुप्ता 'आदित्य'	१६
भगवान धन्वंतरी व यम पूजन का दिन धनतेरस	श्याम नारायण रंगा 'अभिमन्यु'	१८
मौसम	श्रुति पाण्डेय	२०
संयुक्त परिवार के बदलते परिवेश और नये सीमांत	कमला सिंघवी	२१
श्वसुर	बासुदेव प्रसाद	२४
नवजात	पीयूष कुमार पाचक	२५
दुनिया एक पहेली देखी	डॉ. सुधेश	३०
जल पूजन	कादम्बरी मेहरा	३१
पानी की बूँदें कहें	मनोज कुमार शुक्ल 'मनोज'	३३
छोटे अख़बार ज़िंदा हैं यही बहुत है	डॉ. विनय कुमार शर्मा	३४
इश्क़ और जम्हूरियत	दिनेश कुमार डीजे	३६
इंसानियत से दूर होती हमारी सदी	वैशम्पायन चतुर्वेदी	३७
मेरे आँगन की कच्ची मिट्टी	स्नेह ठाकुर	३८
बच्चा चोर	सपना मांगलिक	३९
सीता को सोने का मृग चाहिए	अनिल जोशी	४३
दीपावली संदेश	स्नेह ठाकुर	१ अ
स्नेह ठाकुर का रचना संसार		४४ अ

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नही है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :

16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534

वार्षिक शुल्क Annual subscription.....$25.00

डाक द्वारा By Mail, Canada & USA.....$35.00, Other Countries.....$40.00

Website: http://www.Vasudha1.webs.com

e-mail: sneh.thakore@rogers.com

संपादकीय

वसुधा अपने जन्म-काल से ही हिन्दी के प्रचार, प्रसार, विकास, उन्नयन हेतु संलग्न है. भारत सरकार ने जब नयी शिक्षा नीति २०१६ का प्रारूप सुझावों के लिए जारी किया तो वर्षों से यहाँ रहने के कारण व भारत की गतिविधियों से सम्पूर्णत: परिचित न होने के कारण, सम्पादक एवं प्रवासी साहित्यकार के रूप में, साक्ष्य-रूप के माध्यम से जो झलकियाँ मैंने स्वयं देखी हैं, उसी पर आधारित निम्नांकित पत्र भेजा -

"मानव संसाधन विकास मंत्री

माननीय श्री प्रकाश जावड़ेकर जी,

विनम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहूँगी कि विश्व का कोई भी राष्ट्र स्वभाषा बिना गूँगा है. राष्ट्र की अस्मिता हेतु उत्तरोत्तर उसका प्रचार-प्रसार, विकास, उसका सर्वोपरि होना आवश्यक है. भारत जैसे महान् देश के लिए जो पुरातन काल में विश्व गुरु रहा है और जिसकी भाषा "संस्कृत" ने उच्चस्तरीय संस्कृति में अपना योगदान दे विश्व में अपना लोहा मनवाया है और आधुनिक काल में उसी की आत्मजा "हिन्दी" ने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान राष्ट्र को एकता-सूत्र में बाँध स्वराज दिलवाया था, तदोपरांत "हिन्दी" ही वह भाषा है जो सम्पूर्ण राष्ट्र को एकता-सूत्र में बाँधे रखने की सामर्थ्य रखती है. तभी तो हमारे भारत के प्रधान मंत्री माननीय श्री नरेंद्र मोदी जी द्वारा विदेशों में हिन्दी में दिया गया भाषण वातावरण को तालियों की मधुर ध्वनि से गुंजायमान कर देता है.

आज, विषेशरूप से जब भारत "हिन्दी" को यू.एन. की आधिकारिक भाषा बनाने हेतु प्रयत्नशील है जिसका आठवें विश्व हिन्दी सम्मेलन में कैनेडा से विशिष्ट अतिथि के रूप में सम्मिलित होने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था, जहाँ यू.एन. के मुख्य सभागार में श्री बान की मून ने हिन्दी से अपना सम्बोधन आरम्भ किया था और सैकड़ों भारतीय और प्रवासी भारतीयों की ग्रीवा गर्वोन्नत हुई थी; तथा दसवें विश्व हिन्दी सम्मेलन में "विश्व हिन्दी सम्मान" से सम्मानित होने पर इस दिशा में हिन्दी की प्रगति की भी मैं ईश्वर कृपा से साक्षी रही; साथ ही इस साल १९ अप्रैल को भारत के सर्वोच्च पद राष्ट्रपति माननीय प्रणब मुखर्जी द्वारा "हिन्दी सेवी सम्मान" प्राप्त कर जहाँ व्यक्तिगत रूप से गौरवान्वित हुई हूँ वहीं इस आस की धरती पर आशान्वित भी कि हिन्दी के सुदिन आ रहे हैं.

क्षेत्रीय भाषाएँ उपयोगी हैं, वंदनीय हैं, हिन्दी की सहोदरा के रूप मे. हिन्दी को अपने स्थान से हटाकर, उसके स्थान पर बैठकर नहीं, वरन् उसे अपनी बड़ी बहन मान कर उसके साथ कदम-दर-कदम आगे बढ़कर ही उनकी सार्थकता है. अँग्रेजी की उपयोगिता, उपादेयता है. वैसे देखा जाए तो ज्ञान कभी न भरने वाला एक अंधा कुआँ है. ज्ञान तो असीमित है, इसकी कोई सीमा नहीं. भाषाएँ जितनी ज़्यादा आएँ उतना ही अच्छा है. यह तो मस्तिष्क के लिए आवश्यक उपयोगी भोज्य-सामग्री है, मस्तिष्क की जुगाली है. जितना अधिक से अधिक आप मस्तिष्क का प्रयोग करेंगे यह उतना ही तीक्ष्ण होगा.

मातृभाषा मानव व उसके राष्ट्र को सम्मानित करती है. क्या प्रवासी भारतीय विदेशों में यह गर्व से कह सकता है कि उसे तो केवल अँगेजी आती है, अपनी मातृभाषा नहीं? हाँ! अपनी मातृभाषा को सर्वोपरि मानते हुए उसके साथ-साथ यदि प्रवासी भारतीयों को अँग्रेजी या किसी अन्य देशों की भाषा का भी ज्ञान है तो सोने पे सुहागा क्योंकि वह उसे कुछ सहूलियत प्रदान कर सकती है, यहाँ तक कि उसकी काबलियत में चार-चाँद लगा सकती है. जो स्वयं की भाषा का सम्मान करना नहीं जानते, दूसरे भी उनका सम्मान नहीं करते.

लगभग पचास वर्षों से स्वदेश बने विदेश कैनेडा में अपनी जन्मदात्री भारत माँ व अब पोषण करने वाली कैनेडा की धरती माँ के बीच 'माँ' और 'माँ-सी' का सम्बन्ध बनाये रह रही हूँ. दोनों के प्रति गर्वान्वित हूँ.

विदेशों में अधिकांश प्रवासी भारतीय अपनी मातृभाषा से जुड़े रहने हेतु प्रयत्नशील रहते हैं. पर यदि भारत में ही 'हिन्दी' का उद्गम स्त्रोत सूख जाएगा तो विदेशों में हिन्दी का स्त्रोत कब तक अनवरत बहता रहेगा? 'हिन्दी' के उन्नयन में संलग्न २००४ से 'वसुधा' हिन्दी साहित्यिक पत्रिका का अनवरत संपादन-प्रकाशन कर रही हूँ. भारतीय संस्कृति की धरोहर गाँठ बाँध जहाँ माँ सरस्वती को अर्घ्य-स्वरूप विभिन्न विषय संदर्भित कई पुस्तकें लिखीं वहीं पिछले कुछ वर्षों में 'कैकेयी चेतना-शिखा' उपन्यास, जो साहित्य अकादमी म.प्र. द्वारा अखिल भारतीय वीरसिंह देव पुरस्कार द्वारा सम्मानित हो गौरवान्वित हुआ, 'चिंतन के धागों में कैकेयी - संदर्भ श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण' शोधग्रंथ, 'कैकेयी चिंतन के नव आयाम - संदर्भ : तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस' शोध-ग्रंथ, 'कैकेयी चिंतन के नव परिदृश्य - संदर्भ : अध्यात्मरामायण' शोध-ग्रंथ एवं उपन्यास 'लोक-नायक राम' भी लिखा. इसी श्रृँखला में आगामी उपन्यास है 'जनकनंदिनी सीता'.

आपने त्रिभाषा और भारतीय संस्कृति का समन्वय करते हुये शिक्षा-नीति के निर्माण का जो निर्णय लिया है, उसे सराहते हुए, धन्यवाद देते हुए साधुवाद देती हूँ.

सविनय निवेदन है कि भारत की शिक्षा नीति में 'हिन्दी' की महानता को दृष्टिगत रखते हुए यथासम्भव उसकी गरिमा को बनाए रखा जाए. 'हिन्दी' को उसके गौरवशाली सर्वोच्च पद पर पदासीन कर महिमामण्डित करने के पश्चात् अन्य उपयोगी तथ्यों को ध्यान में रख शिक्षा नीति का अनुमोदन एवं प्रतिपादन ही सर्व-मांगल्य की भावना प्रतिपादित करेगी; हिन्दी के प्रति समर्पित प्रवासी भारतीय के रूप में ऐसी मेरी मान्यता है.

सादर, सस्नेह,

स्नेह ठाकुर "

इस अंक में वैशम्पायन चतुर्वेदी आठवीं कक्षा के छात्र व श्रुति पाण्डेय दिल्ली विश्वविद्यालय की स्नातक छात्रा की रचनाएँ, बाल्यावस्था-किशोरावस्था व युवावस्था का हिन्दी-लेखन के प्रति लगाव हिन्दी के भविष्य हेतु आश्वस्ता प्रदान करता है.

मैं 'हिन्दी कश्मीरी संगम' एवं डॉ. बीना बुदकी जी की आभारी हूँ जिन्होंने 'अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी एवं सम्मान समारोह' श्रीनगर में, 'लल्लेश्वरी स्मृति साहित्य सम्मान' से सम्मानित करने हेतु मुझे निमंत्रित किया. यह हर्ष का विषय है कि बीना जी श्रीनगर, कश्मीर में हिन्दी की ध्वजा फहरा रही हैं.

दीया यह नहीं कहता कि मैं किसी विशेष को ही प्रकाश दूँगा, सबको नहीं. उसके प्रकाश की परिधि में आने वाले सभी उसके प्रकाश से लाभान्वित होते हैं. दीपावली में तो असंख्य दीयों की पंक्तियाँ प्रज्वलित होती हैं. प्रकाश के उस अपूर्व भंडार के उस एक छोटे-से दीये से भी यदि हर मानव शिक्षा ग्रहण कर ले कि 'देना' 'लेने' से बढ़कर 'आत्म-तुष्टि' का माध्यम है, महानता इसमें नहीं कि आप क्या हैं, महानता इसमें है कि आप क्या दे रहे हैं. प्रेमपूर्ण हृदय ही सबके प्रति प्रेमपूर्ण होता है, और ऐसा प्रेम-परिपूर्ण हृदय ही विश्व से घृणा का साम्राज्य समाप्त करने में समर्थ होगा. आइये, दीपावली की मंगलकामनाओं को आगे बढ़ाते हुए नव वर्ष हेतु संकल्प लेकर हृदय से घृणा को विलीन कर उसका अस्तित्व ही समाप्त कर दें. घृणा विदा हुई तो क्रोध स्वयमेव ही हृदय से विदा हो जाएगा. जहाँ चित्त से क्रोध विदा हो जाए और जहाँ प्राण सर्वमांगल्य हेतु प्रार्थना से परिपूर्ण हों, वहाँ शैतान का अस्तित्व कैसे **बचेगा? इसी परिपूर्णता की ओर अग्रसर....** 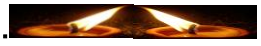 **सस्नेह, स्नेह ठाकुर** 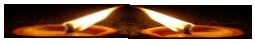

अँधियार ढल कर ही रहेगा

गोपाल दास नीरज

आँधियाँ चाहें उठाओ,
बिजलियाँ चाहें गिराओ,
जल गया है दीप तो अँधियार ढल कर ही रहेगा।

रोशनी पूँजी नहीं है, जो तिजोरी में समाये,
वह खिलौना भी न, जिसका दाम हर गाहक लगाये,
वह पसीने की हँसी है, वह शहीदों की उमर है,
जो नया सूरज उगाये जब तड़पकर तिलमिलाये,
उग रही लौ को न टोको,
ज्योति के रथ को न रोको,
यह सुबह का दूत हर तम को निगलकर ही रहेगा।
जल गया है दीप तो अँधियार ढल कर ही रहेगा।

दीप कैसा हो, कहीं हो, सूर्य का अवतार है वह,
धूप में कुछ भी न, तम में किन्तु पहरेदार है वह,
दूर से तो एक ही बस फूँक का वह है तमाशा,
देह से छू जाय तो फिर विप्लवी अंगार है वह,
व्यर्थ है दीवार गढ़ना,
लाख लाख किवाड़ जड़ना,
मृतिका के हाथ में अमृत मचलकर ही रहेगा।
जल गया है दीप तो अँधियार ढल कर ही रहेगा।

है जवानी तो हवा हर एक घूँघट खोलती है,
टोक दो तो आँधियों की बोलियों में बोलती है,
वह नहीं कानून जाने, वह नहीं प्रतिबन्ध माने,
वह पहाड़ों पर बदलियों सी उछलती डोलती है,
जाल चाँदी का लपेटो,
खून का सौदा समेटो,
आदमी हर कैद से बाहर निकलकर ही रहेगा।
जल गया है दीप तो अँधियार ढल कर ही रहेगा।

वक्त को जिसने नहीं समझा उसे मिटना पड़ा है,
बच गया तलवार से तो फूल से कटना पड़ा है,
क्यों न कितनी ही बड़ी हो, क्यों न कितनी ही कठिन हो,
हर नदी की राह से चट्टान को हटना पड़ा है,
उस सुबह से सन्धि कर लो,
हर किरन की माँग भर लो,
है जगा इन्सान तो मौसम बदलकर ही रहेगा।
जल गया है दीप तो अँधियार ढल कर ही रहेगा ।

छद्म भिखारी

डॉ. कविता त्यागी

अपने माता-पिता को रिसीव करने के लिए स्टेशन परिसर में प्रवेश करते ही दक्ष के कानों में रेलवे अनाउंसमेंट का स्वर गूँज उठा। वह गाड़ी, जिससे उसके माता-पिता आ रहे थे, नियत समय से दो घंटे देरी से आठ बजे पहुँच रही थी। आठ बजने में अभी देर थी। दक्ष ने अपनी कलाई पर बँधी घड़ी पर दृष्टि डाली, अभी सात भी नहीं बजे थे। घड़ी से दृष्टि हटी, तो देखा, सामने भिक्षा-याचना के लिए कई हाथ फैले हुए हैं। भिखारियों के रूप में छोटे-छोटे बच्चों और वृद्धों की दयनीय दशा देखकर दक्ष की संवेदना जाग उठी। उसकी संवेदना कार्यरूप में परिणति पाने से पहले ही तब खंडित हो गयी, जब उन भिखारियों को झिड़कने वाला एक चिर-परिचित स्वर उसे सुनायी पड़ा। दक्ष ने उधर देखा, निकट ही उसका अभिन्न मित्र प्रभात उससे कह रहा था - "यार! इनकी फटी, मैली-कुचैली वेशभूषा और याचना की दयनीय मुद्रा देखकर इनके लिए तुम अपनी संवेदना बर्बाद मत करो! यह सब इनकी युक्तियाँ हैं, भले लोगों को ठगने की!" दक्ष ने प्रभात के कथन पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। भावशून्य दृष्टि से उसे घूरता रहा। प्रभात ने पुनः कहा- "हाँ यार, मैं सच कह रहा हूँ! तुझे एक दिन की घटना सुनाता हूँ -

"उस दिन बहुत गर्मी थी। स्टेशन-परिसर के बाहर गन्ने का रस निकालने वाले कोल्हू के निकट जाकर मैंने एक गिलास रस बनाने के लिए आदेश दिया। गन्ने का रस पीकर मैं कुछ समय के लिए स्टेशन-भवन में प्रवेश करने के लिए बनी हुई सीढ़ियों पर बैठ गया। कुछ ही समय पश्चात् मैने देखा, जिस व्यक्ति ने मुझे गन्ने का रस बनाकर दिया था, वही व्यक्ति अब भिक्षा माँग रहा था। मैंने अपना सिर झटका, सोचा, यह मेरा भ्रम है। फिर सोचा, एक बार उसी कोल्हू के निकट जाकर देखूँ। अन्ततः मैं वहाँ चला गया। मैंने देखा, अब वहाँ एक स्त्री और एक दस-बारह वर्ष का बच्चा उस कोल्हू का कार्यभार सम्हाल रहे थे। इस बार भी मैने एक गिलास गन्ने का रस पिया आरै वहाँ से कुछ दूरी पर जाकर बैठ गया। लगभग एक घंटा पश्चात् मैंने देखा, कोल्हू का कार्यभार एक अधेड़ व्यक्ति ने सँभाल लिया था और वह स्त्री उस बच्चे के साथ भीख माँग रही थी।"

यद्यपि प्रभात द्वारा सुनायी गयी घटना से दक्ष आश्चर्यचकित नहीं था, तथापि इस विषय ने उसके मस्तिष्क को झकझोर कर रख दिया था। प्रभात की बातें सुनकर अचानक दक्ष को अपने दादाजी की याद आ गयी, जो भिखारियों के साथ-साथ उन्हे भिक्षा देने वालों की भी तीव्र आलोचना किया करते थे।

गाँव में उसके दादाजी ही अकेले एसे व्यक्ति थे, जो स्नातकोत्तर उत्तीर्ण करने के बाद भी कृषि-कार्य में रुचि लेते थे। अन्यथा गाँव के प्रायः सभी शिक्षित व्यक्ति शहर के लिए पलायन कर चुके थे। अब गाँव में जो शेष बचे थे, वे अधिकांश अशिक्षित या कम शिक्षित लोग थे। अपने पिता की इकलौती संन्तान होन के कारण और बहुत अधिक पैतृक संपत्ति होने के कारण दादाजी को शहर जाने की अनुमति नहीं मिली थी, किन्तु उनकी सोच शहरी शिक्षित लागों से पीछे नहीं थी। दादी ने एक बार बताया था कि अपनी इसी सोच के चलते दादाजी ने एक बार गाँव में एक नौजवान भिखारी को फटकारते हुए उसके हाथ में फावड़ा थमाते हुए कहा था - "चल, मेरे साथ खेतों में काम करना! मैं तुझे रोटी-कपड़े के साथ-साथ मजदूरी भी सवायी दूँगा। शर्म नहीं आती है हाथ फैलाकर भीख माँगते हुए!"

दादाजी की फटकार सुनते ही वह भिखारी हाथ से फावड़ा फेंककर यह कहते हुए भाग खड़ा हुआ कि उसे बिना परिश्रम किये ही पर्याप्त पैसा मिल जाता है। दादाजी बताया करते थे कि उस दिन के पश्चात् वह नौजवान भिखारी आस-पास के गाँव में भी दुबारा कभी दिखायी नहीं दिया। दादी द्वारा

बतायी गयी एक घटना का स्मरण होते ही दक्ष के मस्तिष्क पटल पर अपने बचपन की स्मृतियाँ एक-एक करके छाने लगीं।

बचपन से ही दक्ष उदार हृदय और कोमल प्रकृति का था। दया, प्रेम, सहिष्णुता और त्याग-तपस्या का उसमे अभाव नहीं था। पीड़ितों के प्रति सहानुभूति असहायों की सहायता करने का संस्कार उसे अपनी माँ से मिला था। उसकी माँ धार्मिक प्रवृत्ति की थी। प्रायः भूखे भिखारियों को भोजन, वस्त्र तथा यथासामर्थ्य धनराशि आदि देकर आत्मसंतोष प्राप्त किया करती थीं। उस समय दक्ष भी अपनी माँ के साथ रहकर परहिताय कार्यों में यथायोग्य सहयोग करता था, किन्तु जब कभी उसके दादाजी को ज्ञात होता था कि उनके घर में किसी भिखारी को भोजन-वस्त्र आदि दिया जा रहा है, तब क्रोधावेश में वे हाथ में डंडा लेकर सिर पर पाँव रखकर चिल्लाते हुए आते थे - "इन ससुरों की सहायता करके तुम देश का कितना बड़ा अनर्थ कर रहे हो, जरा-सा भी आभास है तुम्हे? तुम सोचते हो, इनकी सेवा करके पुण्य का काम कर रहे हो? अरे, महापाप कर रहे हो तुम! और मेरे पोते को भी इस पाप में भागीदार बना रहे हो! यह भिक्षावृत्ति देश का कुष्ठ है, जिसे तुम जैसे लोग पुष्ट करने में लगे हुए हैं!"

दादाजी को चिल्लाते हुए देखकर दादी की भवें खिंच जाती थी, परन्तु उनके आवेश से भयभीत दादी मुँह चिढ़ाकर मूक भाषा में ही अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती। दादी की प्रतिक्रिया देखकर दादाजी पुनः कहना आरम्भ करते - "देश के इन लोगों के जो हाथ आज भिक्षा माँगने के लिए फैल रहे हैं, ये हाथ काम करने के लिए उठेंगें, तभी तो इनका स्वाभिमान जागेगा और तब देश की उन्नति में इनकी कितनी सहभागिता होगी! जिनका स्वाभिमान मर चुका है, उन लोगें की आत्मा उन्हें भीख माँगने पर धिक्कारती नहीं है। जबकि परिश्रम करके धनार्जन करने में उन्हें संकोच होता है।"

"एक ग़रीब कू दो रोटी या एक मुट्ठी आटा देने से देश की तरक्की ना रुकती है। सास्तरों में लिखा है, भिखारी कू अपने दरवाजे से खाली हाथ लौटाने वाले के घर में भगवान अन्न-धन की जगह दरिद्रता करे है!"

"अच्छा! तुमने बहुत शास्त्र पढ़े हैं!"

"सासतर नहीं पढ़े, पंडितों से तो सुना है !"

"अन्धविश्वास हैं सब। इन निकम्मों ने भिक्षावृत्ति को पेशा बना रखा हैं। शहर में जाकर देखो, किसी भी रेलवे-स्टेशन और बस अड्डे पर भिखारियों की भीड़ हाथ फैला-फैलाकर मक्खियों के झुंड की तरह चारों ओर से घेर लेती है। ऐसे आत्मसम्मानविहीन निकम्मे नागरिकों - भिखारियों की फ़ौज देश को पतन के गर्त में नहीं ले जाएगी, तो क्या उन्नति के शिखर पर ले जाएगी? बताओ !"

दादाजी पुनः कुछ कहें, उससे पहले ही कुछ पाने की आशा में दरवाजे पर बैठा भिखारी अपना धैर्य खोकर धीरे-से वहाँ से खिसक लेता। दादाजी के इस व्यवहार से दक्ष भी सहम-सा जाता था और गज-भर का घूँघट ओढ़े हुए कोने में खड़ी माँ की टाँगों से लिपट जाता था। दादी भाँप लेती थी कि जो दशा दक्ष की है, वही दशा उसकी माँ की भी है। अतः वातावरण को सामान्य करने के लिए दादी दक्ष की माँ के निकट जाकर दादाजी के प्रति नाराज होने का-सा अभिनय करती हुई कहतीं - "बुढ़ापे में तेरे ससुर का दिमाग सठिया गया है, कुछ भी कहते हैं !" दादी के शब्द कानों में पड़ते ही दादाजी अपने कथन को प्रमाणित करने के लिए और अधिक कठोर होकर कहते - "बुद्धि मेरी नहीं, तुम सास-बहू की सठिया गयी है। तुम दोनों इस बालक की बुद्धि भी अपनी जैसी कर दोगी, दिन-रात मुझे यही चिन्ता सताती है!" आरोप के रूप में अपने ऊपर दादाजी का पलटवार होते ही दादी की भवें तन जातीं थी और वे मोर्चा सँभालने के लिए खड़ी हो जातीं। दादी का विकराल रूप देखकर दादाजी तुरन्त अपने व्यवहार

को विनम्र बनाते हुए उन्हें समझाते - "एक बार विचार करके देखो, जिस निकम्मे व्यक्ति को तुम ग़रीब भूखा मानकर रोटी-कपड़े या रुपये-पैसे का दान कर रही हो, यह वास्तव में दान का पात्र है भी? यह दान का पात्र नहीं है! यह स्वस्थ है, जवान है, परिश्रम करके रोज़ी-रोटी कमाकर अपनी और अपने परिवार की आवश्यकताएँ पूरी कर सकता है! मैं गलत तो नहीं कह रहा?"

दादाजी के समझाने से दादी को कुछ-कुछ समझ में आता, तब वे थोड़ी-नरम पड़ जाती - "हाँ, कह तो ठीक रहे हो, पर दान-पुन्न तो धर्म का काम है! दान-पुन्न करने की हमारी परम्परा पुराने जमाने से चली आ रही है!" दादी कुछ नरम पड़कर प्रश्नात्मक दृष्टि से अपनी जिज्ञासा व्यक्त करती, तो दादाजी को अपनी विजय का रास्ता साफ दिखाई देने लगता - "यही! यही मैं कह रहा हूँ! हमारी परम्पराएँ और धर्म-शास्त्र असहायों-ज़रूरतमन्दों की सहायता करने के लिए कहते हैं! एसे निकम्मों-बेशर्मों के लिए दान का निषेध करते हैं, जिन्होंने परिश्रम करने की क्षमता रखते हुए भी भिक्षावृत्ति को अपना व्यवसाय बना लिया है!" दादाजी के तर्कों के समक्ष दादी अब तक हथियार डालने के लिए विवश हो जाती थी और दादाजी मन-ही-मन अपनी विजय-पताका फहराकर मुस्कुराते हुए चले जाते थे।

अपने दादाजी की तर्कपूर्ण-विवकेयुक्त शिक्षाओं तथा माँ की धार्मिक-उदार प्रकृति के तथा अंधविश्वासों के बीच संस्कारित होता हुआ दक्ष अठ्ठारह वर्षों तक गाँव में रहा था। तत्पश्चात् उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु उसको शहर में भेज दिया गया। उच्च शिक्षा प्राप्त करके पिछले दस वर्षों से वह शहर में ही नौकरी कर रहा है, परन्तु आज भी उसके चित् में गाँव की प्रत्येक घटना, प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक व्यक्ति की छवि वैसी ही अंकित है, जैसी गाँव में रहते हुए थी।

भिक्षावृत्ति पर बातचीत करते-करते वे दोनों इतने तल्लीन हो गये कि कब आठ बज गये उन्हें पता ही नहीं चला। उन दोनों की बातचीत का सूत्र तब टूटा, जब रेल उनके निकट आकर रुकी। रेल रुकते ही दक्ष उधर दौड़ा, जहाँ वह डिब्बा था, जिसमें उसके माता-पिता के लिए सीटें आरक्षित की गयी थीं। अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक वह उनके पास पहुँचकर उन्हें अपने साथ लेकर रेल से नीचे उतर आया।

स्टेशन-परिसर से बाहर आकर दक्ष अपने माता-पिता के साथ कुछ ही दूर चला था, भिक्षा याचना करते हुए पुनः कई भिखारी हाथ फैलाकर उसके इर्द-गिर्द आ खड़े हुए। भिखारियों को देखकर दक्ष असमंजस में पड़ गया। वह उन्हें भिक्षा न देकर, डाँटकर भगाना चाहता था, किन्तु माँ के समक्ष ऐसा व्यवहार करके वह माँ को आहत नहीं करना चाहता था। वह कुछ निर्णय कर पाता, इससे पहले ही उसकी दृष्टि माँ के सकारात्मक भावयुक्त मुस्कुराते हुए चेहरे पर पड़ी। माँ की आँखें मूक वाणी में कह रहीं थीं, याचक को निराश करना अच्छी बात नहीं है ! उनके फैले हुए खाली हाथों पर कुछ तो रख दो ! माँ के भावों को वह समझ चुका था, अब उनका अनुपालन शेष था। माँ के हृदयस्थ भावों को परखकर दक्ष ने अपनी जेब में हाथ डाला और पर्स निकाल लिया। पर्स में पाँच सौ तथा एक हजार के बड़े नोट थे। पर्स में से पाँच सौ का एक नोट लेकर दक्ष क्षण-भर के लिए किंकर्तव्यविमूढ़-सा खड़ा रहा। तभी एक भिखारी ने आगे बढ़कर उसके हाथ से पाँच सौ का नोट लेते हुए कहा - "साहब, मैं आपको पाँच सौ के छुट्टे देता हूँ !"

दक्ष ने देखा, उस भिखारी के कपड़े अत्यन्त मैले और फटे हुए थे। उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी तथा यथोचित देखभाल एवं पोषण के अभाव में सिर के रूखे-सूखे बाल पक चुके प्रतीत होते थे। दक्ष उस भिखारी को गूढ़, स्तब्ध दृष्टि से निहार रहा था, तभी उसे अनुभव हुआ कि भिखारी छुट्टे नोट उसकी ओर बढ़ा रहा है। अपनी ओर बढ़े हुए हाथ की अँगूठी को देखकर अचानक दक्ष के चेहरे की भाव-भंगिमा बदलने लगी। उसकी आँखों के कोमल भावों का स्थान संदेह, आश्चर्य और कठोरता ने ले लिया।

दक्ष की मनोदशा का अनुमान करके माँ ने चिन्तित स्वर में पूछा- "बेटा, क्या बात है?"

"कुछ नहीं, माँ !" कहकर दक्ष ने भिखारी के हाथ से पाँच सौ के छुट्टे लेकर माँ के हाथ में दे दिये। माँ ने अनेक भिखारियों को पैसे और अपने साथ गाँव से लाया हुआ भोजन बाँटा, लेकिन दक्ष का चित्त अब दानवृत्ति से ऊब रहा था। अब न तो उसका मन शान्त था, न मस्तिष्क। अपने अन्तःकरण में वह एक विचित्र-सी बेचैनी का अनुभव कर रहा था। घर पर पहुँचकर भी उसका चित्त बहुत अशान्त था, इसलिए माता-पिता को विश्राम करने के लिए कहकर वह यथाशीघ्र घर से निकल गया और सीधा उसी रेलवे-स्टेशन पर गया, जहाँ से उसने पाँच-सौ का नोट छुट्टा कराया था। प्लेटफॉर्म पर जाकर वह इधर-उधर भिखारी को ढूँढने लगा, किन्तु एक घंटा बीत जाने पर भी दक्ष को वह भिखारी नहीं मिला। अंत में जब वह निराश होकर लौटने लगा, तब प्लेटफॉर्म के बाहर स्टेशन परिसर में उसको वही भिखारी दिखाई पड़ा। दक्ष तेज कदमों से उधर ही चल पड़ा। वह कुछ ही क्षणों में उसके निकट पहुँच गया। भिखारी ने दक्ष को देखते ही पूछा - "साहब, क्या बात है? कुछ सामान छूट गया था क्या?"

दक्ष ने भिखारी के प्रश्न का उत्तर नहीं दिया, घूरकर पहले उसके हाथ को देखा और फिर चेहरे को घूरने लगा। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसेकि वह भिखारी की दाढ़ी के पीछे छिपे हुए व्यक्ति को पहचानने की कोशिश कर रहा था। कुछ क्षणों तक घूरते रहने के पश्चात् दक्ष ने भिखारी के गाल पर एक जोरदार तमाचा जड़ दिया और एक भददी-सी गाली देते हुए उसकी दाढ़ी पर झपटा। थप्पड़ खाकर भिखारी सन्न रह गया, लेकिन दक्ष का हाथ दाढ़ी पर पड़ते ही वह ऊँचे स्वर में बचाओ-बचाओ चिल्लाने लगा। अब तक भिखारी की दाढ़ी दक्ष के हाथों में आ चुकी थी। इस दृश्य को देखने वाले आस-पास लोगों में से कुछ हँस रहे थे और कुछ आश्चर्य से आँखें फाड़कर देख रहे थे। भिखारी की आवाज सुनकर उसी समय वहाँ पर कुछ पुलिसकर्मी आ पहुँचे और बीच-बचाव करने लगे। भिखारी ने रोकर-गिड़गिड़ाकर पुलिस से शिकायत की कि युवक ने आकर अकारण ही उसके गाल पर तड़ातड़ थप्पड़ मारना आरंभ कर दिया। उसने पुलिस से गुहार लगायी कि यदि उसकी सहायता नहीं की गयी, तो युवक उसको मार डालेगा। भिखारी की शिकायत पर पुलिस ने दक्ष को पकड़कर भद्दी गाली दी और अपने हाथ का डंडा उसकी पीठ पर मारते हुए कहा- "स्साले, भिखारी पर जोर आजमाइश करता है! चल, थाने में जाकर अपना जोर दिखाना तू !"

"सर, यह वास्तव में भिखारी नहीं है, धोखेबाज है! भिखारी का भेष धारण कर भले लोगों को धोखा दे रहा है! इस ने बाल और दाढ़ी दोनों नकली लगाये हैं, आप स्वयं देख लीजिए !"

"अच्छा! तू हमें बतायेगा, भिखारी नकली है या असली है! हमें तो तू ही फ्रॉड-सा दीख रहा है!" पुलिसकर्मी ने दक्ष को डाँटकर उसका उपहास करते हुए कहा।

"सर, मैं सच कह रहा हूँ! मैंने इसको इसके हाथ की उँगली में पहनी अँगूठी देखकर पहचाना है! मैं इसे भली-भाँति जानता हूँ! जिस बिल्डिंग में मै किराये पर रहता हूँ, यह उसका मालिक विनय राणा है, यहाँ स्वांग भरकर भिखारी बना हुआ है !'

दक्ष चीख-चीखकर पुलिस को भिखारी का सत्य बताने का प्रयास करता रहा, किन्तु पुलिसकर्मी को जैसे उसका एक एक भी शब्द सुनायी नहीं दिया। कुछ भी सुनने-समझने की आवश्यकता का अनुभव किये बिना पुलिसकर्मी दक्ष को भद्दी गालियाँ देते हुए उसका कालर पकड़कर खींचते घसीटते हुए अपनी जीप की ओर बढ़ते रहे। पुलिस के व्यवहार से क्षुब्ध होकर दक्ष ने पीछे मुड़कर एक बार भिखारी की ओर कटु भाव से देखकर कहा - "छोड़ूँगा नहीं मैं तुम्हें, याद रखना !"

"स्साले! धमकी देता है उसको! जब तक तेरी खाल नहीं उधेड़ी जायेगी, तब तक तेरा दिमाग ठिकाने नहीं आयेगा!" पुलिसकर्मी ने पुनः दक्ष को डाँटा और उसके साथ अभद्र व्यवहार करते हुए उसको बलपूर्वक अपनी जीप में बिठा लिया। कुछेक मिनट बाद जीप में बैठै हुए दक्ष ने देखा, वही भिखारी जीप के निकट खड़ा हुआ पुलिसकर्मी से कह रहा है -

"साहब इसको छोड़ना मत! आप छोड़ देंगे तो यह यहाँ आकर फिर मार-पीट करेगा!"

दक्ष ने भिखारी की ओर घृणापूर्वक घूरकर देखा। अब तक वह दक्ष के अत्यन्त निकट आ चुका था। उसने और अधिक निकट आकर दक्ष के कान में कहा - "देख लिया भिखारी से पंगा लेने का परिणाम? अभी तो आगे-आगे देखना! हमारी कमाई सारी हमारी ही नहीं रहती, इसमें से पुलिस वालों का भी हिस्सा जाता है। ऐसे ही नहीं पड़े हैं हम यहाँ! हर भिखारी के पास यहाँ भीख माँगने का लाइसेंस है। समझे!"

भिखारी की बातें सुनकर दक्ष व्याकुल हो उठा। वह निर्णय नहीं कर पा रहा था कि उसकी बातों पर विश्वास करे या न करे? एक ओर उसका बुद्धि-पक्ष था, दूसरी ओर हृदय। पुलिस की प्रतिक्रिया देखकर उसको भिखारी की बातों में पर्याप्त मात्रा में सत्य का अंश प्रतीत हो रहा था। दूसरी ओर उसका हृदय कह रहा था कि सभी भिखारी ऐसे धूर्त नहीं हैं, जैसा कि यह भिखारी है; किन्हीं कारणों से उपजी अत्यधिक निर्धनता की विवशता की आड़ में लोगों के दया-भाव को भुनाने वाला! दक्ष अपने अन्तर्द्वंद्व में इतना उलझ गया कि उसको समय का कुछ बोध ही न रहा। वह अपने विचार-द्वंद्व से बाहर तब आया, पुलिस-थाना स्थल पर पहुँचकर जब पुलिसकर्मी ने उसको जीप से उतरने के लिए कहा। पुलिसकर्मी के अभद्र व्यवहार से बचने के लिए दक्ष उसके निर्देशों का अनुपालन करते हुए थाना परिसर में अपराधियों के लिए बनी एक कोठरी में जाकर बैठ गया। उस समय वहाँ पर थानाध्यक्ष उपस्थित नहीं था, अतः दक्ष ने कुछ समय चुप रहना ही बेहतर समझा। कई घंटे पश्चात् जब थानाध्यक्ष वहाँ आ पहुँचा, दक्ष की आँखों में आशा की हल्की-सी चमक आयी, लेकिन अगले ही क्षण उसकी वह आशा कहीं लुप्त होने लगी, जब थानाध्यक्ष ने उसको इस प्रकार घूरकर देखा जैसे कि वह बहुत बड़ा अपराधी है। अपनी दरकती हुई आशा की जमीन में धँसने से पहले उसने एक बार पुनः सच्चाई पर दृढ़ रहने का प्रयास करते हुए थानाध्यक्ष के समक्ष घटना की सच्चाई का यथातथ्य ब्यौरा प्रस्तुत करना आरम्भ किया। अपनी बात कहते-कहते दक्ष को अनुभव हुआ कि थानाध्यक्ष बड़ी ही उपेक्षा और कठोर दृष्टि से उसको घूर रहा है। दक्ष अपनी बात पूरी कर पाता, इससे पहले ही थानाध्यक्ष ने कर्कश वाणी में अपनी पारखी दृष्टि का परिचय देते हुए कहा - "सब पता है हमें, तू कितना सच बोल रहा है, कितना झूठ बोल रहा है! अपराध करने वाला कोई भी आदमी कभी कहता है क्या कि वह अपराधी है? नहीं न?"

"नहीं सर.....पर मैं बिल्कुल सच कह रहा हूँ! आप स्वयं वहाँ जाकर .....!"

"चल, बहुत हो गया! अब तू अपनी खैरियत चाहता है, तो चुपचाप बैठ जा! इसी में तेरी भलाई है, वरना ऐसी-ऐसी धाराओं के तहत अन्दर करुँगा, पूरी उम्र तू जेल में सड़ेगा!"

थानाध्यक्ष की धमकी भरी कर्कश वाणी से सहम-सा गया दक्ष। अब चुप बैठने में ही उसको अपना हित प्रतीत होने लगा था। वह अपने किसी परिचित से संपर्क करना चाहता था, परन्तु नहीं कर सका क्योंकि उसका मोबाइल पावर ऑफ करके पहले ही थानाध्यक्ष की मेज पर रख दिया गया था। अब उसके पास एक ही विकल्प शेष था – भगवान पर भरोसा रखते हुए चुप बैठकर पुलिस वालों की गतिविधियों को देखना। मूक-बधिर पुलिस के समक्ष बार-बार अपना पक्ष रखकर अब वह उन्हें अपने प्रति और अधिक कुपित नहीं करना चाहता था।

जब पुलिस ने दक्ष को घर जाने की अनुमति दी, तब तक थाने में बैठे-बैठे दोपहर के दस बजे से शाम के पाँच बज गये थे। दोपहर से बेटे की कोई सूचना नहीं मिलने से दक्ष के माता-पिता बहुत चिन्तित थे। किसी प्रकार के अनिष्ट की आशंका से उनके प्राण सूखे जा रहे थे। दक्ष के घर पहुँचने पर उसकी कुशलता जानने के लिए वे दौड़कर उसके निकट आये, जैसे कि बेटे को देखकर ही उनके शरीर में रक्त का संचार हुआ था। माँ की ममता आँखों से आँसू बनकर उमड़ने लगी। कुछ समय पश्चात् घर का वातावरण सामान्य होने पर दक्ष ने दिन में घटित घटना के विषय में यथातथ्य माता-पिता को बताया। सारी बातें सुनकर प्रभु के कोप से भयभीत माँ उदास हो गयी कि निर्बल की आत्मा को कष्ट देने से आज तो इतना ही दुष्परिणाम भुगतना पड़ा है, आगे न जाने कितनी विपत्तियाँ झेलनी पड़ेंगी!

दक्ष ने माँ को समझाया –'माँ, वह दुर्बल या गरीब नहीं है! जिस फ्लैट में हम लोग बैठे हैं, इसका मालिक वही भिखारी है!'

माँ को समझाकर दक्ष ने अपने एक अधिवक्ता मित्र प्रभात से सम्पर्क किया और उसके समक्ष घटना का यथातथ्य वर्णन करके कहा - "वकील साहब! भोले-भाले लोगों की मानवीयता और उदारता का छद्म वेश धारण करके अनुचित लाभ उठाने वाले ऐसे व्यक्ति मनुष्य के रूप में भेड़िया हैं। ऐसे लोगों को यूँ ही तो नहीं छोड़ा जाना चाहिए! अब इस भिखारी को दण्ड दिलाकर ही मुझे चैन मिलेगा। जन सामान्य में असहायों की सहायता करने की प्रवृत्ति क्षीण न पड़े, इसलिए यह आवश्यक भी है!"

'दक्ष, मैं मानता हूँ, बिना मेहनत किये इन निकम्मों की आय मेहनत करने वालों की अपेक्षा बहुत अधिक है, पर यह एक अकेला तो ऐसा भिखारी नहीं है! यहाँ कितने ही ऐसे भिखारी हैं, जिन्होंने भिक्षावृत्ति को कमाई का साधन बनाया हुआ है! भिखारी ही क्यों, साधुओं का चोला धारण करके लूटने वालों की संख्या कम है क्या यहाँ? तुम किस-किसको दण्ड दिलाओगे ?'

'किसी को तो शुरुआत करनी ही पड़ेगी कभी-न-कभी, कहीं-न-कहीं से! फिर हम ही क्यों नहीं? क्यों न आज ही इस नेक काम का शुभारंभ कर दें, अभी?'

प्रभात ने उसके विचारों का पूर्ण समर्थन किया और अपने पक्ष में साक्ष्य जुटाने का भी परामर्श दिया ताकि उस भिखारी के विरुद्ध कार्यवाही की जा सके। अगले दिन दक्ष ने अपने ऑफिस से छुट्टी ली और प्रभात के साथ अपने पक्ष को प्रबल बनाने के लिए साक्ष्य एकत्र करने में जुट गया। सर्वप्रथम वे दोनों पुनः उस स्टेशन पर गये जहाँ पर पिछले रोज दक्ष ने छद्म भिखारी के छद्म चोले को उतारा था। दोनों उस भिखारी की तलाश में घंटा-भर तक स्टेशन-परिसर के बाहर-भीतर अगल-बगल इधर-उधर भटकते रहे परन्तु भिखारी का कहीं कुछ पता नहीं था। पर्याप्त तलाश के पश्चात् भी उस वेशभूषा में वहाँ कोई भिखारी न पाकर उनका अनुमान था कि अवश्य ही आज उस भिखारी ने अपना चोला बदल दिया होगा। अतः दोनों मित्र उस व्यक्ति को उसकी चिर-परिचित आँखों की छवि और अँगूठी के आधार पर किसी भी भिखारी में पहचानने का प्रयास करने लगे। पर्याप्त समय तक परिश्रम करने पर भी अपने प्रयास में सफलता नहीं मिली, तो दोनों मित्र वापिस लौटने लगे। उसी क्षण दक्ष ने प्रभात के कंधे पर हाथ रखते हुए एक भिखारी की ओर संकेत करके कहा - "वह आ रहा है!' क्षण-भर के लिए दोनों मित्रों ने एक-दूसरे की ओर देखा और अपनी योजना को कार्यरूप में परिणित करने के लिए आगे बढ़ गये।

दक्ष तेज गति से आगे बढ़ रहा था और प्रभात उसके पीछे-पीछे। उस भिखारी के निकट जाकर दोनों एक क्षण लिए रुके। अभीष्ट की पहचान हेतु उन्होंने एक बार भिखारी की ओर देखा। वह कुछ समझ पाता, इससे पहले ही दक्ष ने उसको तड़ातड़ दो-तीन थप्पड़ जड़ते हुए उसकी नकली दाढ़ी और सिर की नकली लम्बी-रूखी जटाएँ एक ही झटके में अपने हाथ में ले ली। यह सब कुछ ठीक उसी प्रकार घटित हुआ जैसे कि एक दिन पहले हुआ था और निकट खड़े प्रभात ने इस सारी घटना को अपने कैमरे

में कैद कर लिया। थप्पड़ लगने तक वह समझ चुका था कि दक्ष अपना प्रतिशोध लेने के लिए लौटा है, किन्तु वह नहीं जानता था कि अब यह विषय दक्ष के व्यक्तिगत मान-अपमान, हानि-लाभ तक सीमित नहीं रह गया है, बल्कि इससे ऊपर उठकर जनसामान्य की सहानुभूति का अनुचित दोहन करने वालों के विरुद्ध एक बड़े संघर्ष का रूप धारण करने जा रहा है। वह चिल्लाया- 'बचाओ-बचाओ!' भिखारी की चीख-पुकार सुनकर भीड़ इकटठी हो गयी।

कुछ ही मिनट में पुलिस भी आ पहुँची। दक्ष ने संकेत करके प्रभात को बताया कि सभी पुलिसकर्मी वही हैं, जो पिछले दिन थे। पुलिसकर्मी ने दक्ष की ओर अपना डंडा घुमाते हुए चिर-परिचित लहजे में डाँटकर कहा - " फिर आ गया तू! इस बार तुझे.....!'

प्रभात ने पुलिसकर्मी का वाक्य बीच में काटकर अपना पहचान-पत्र दिखाते हुए कहा - "दीवान साहब, आपका वेतन सरकार के जिस खज़ाने से मिलता है, वह जनता की मेहनत की कमाई के टैक्स से भरता है! जनता की रक्षा करना आपका कर्तव्य है! इस भेड़िये को दण्ड दिलाने के लिए इसके विरुद्ध मेरे इस कैमरे में पर्याप्त प्रमाण हैं। इसको बचाने का प्रयास करने से पहले एक बार सोच लेना! आपकी नौकरी तो जायेगी ही, पूरा जीवन कोर्ट के चक्कर लगाने में न बिताना पड़ जाए!"

प्रभात की चेतावनी सुनकर पुलिसकर्मी सहम गया, क्योंकि चेतावनी किसी सामान्य व्यक्ति की नहीं थी, एक अधिवक्ता की थी। दूसरी ओर दक्ष अब तक उस भिखारी की वास्तविकता भीड़ को बता चुका था। पिछले दिन की और आज की घटना के विषय में सत्य तथ्य बताकर उसने वहाँ पर उपस्थित बुद्धिजीवियों का समर्थन प्राप्त कर लिया था। वहाँ पर उपस्थित एक अन्य व्यक्ति रमन ने भी भीड़ को बताया - "यह कभी किसी से पचास रुपये से कम स्वीकार नहीं करता है! जब मैंने इधर शिफ्ट किया था, पहली बार मुझे इस ने अपनी सूरत पर एक पिता की लाचारी का आवरण ओढ़कर ठगा था। इसने मुझे बताया था कि इसको अस्पताल में मौत से लड़ रहे अपने बच्चे के प्राण बचाने के लिए अस्सी हजार रुपये की आवश्यकता है। यदि उसका ऑपरेशन हो जाए तो वह बच जाएगा! उस समय इसके दयनीय व्यवहार ने एक निर्धन-विवश पिता के प्रति मेरे हृदय में इतनी सहानुभूति जगायी कि मैंने तुरन्त इसको पाँच सौ रुपये दे दिये। एक सप्ताह पश्चात् मुझे यह पुनः यहीं पर मिला। इस बार इसकी पत्नी बीमार थी और उसके इलाज के लिए इसको अस्सी हजार रुपये की आवश्यकता थी! इसने मुझे नहीं पहचाना था, पर मैंने इसे पहचान लिया था। उस दिन मैंने इसके साथ कुछ मिनट बातचीत करके समझ लिया था कि यह फ्रॉड़ आदमी है!"

रमन के रूप में दक्ष और प्रभात को एक मजबूत गवाह मिल गया था। सप्ताह-भर में उन्होंने उस छद्म भिखारी के विरुद्ध पर्याप्त साक्ष्य एकत्र कर लिये जिनके आधार पर उस पर आरोप सत्य सिद्ध किया जा सके। तत्पश्चात् पूर्ण आत्मविश्वास के साथ प्रभात ने कोर्ट में अपील करके उसके विरुद्ध मुकदमा दायर कर दिया।

मुकदमे की पहली सुनवाई में प्रभात और दक्ष को पर्याप्त सकारात्मक ऊर्जा प्राप्त हुई। उनके विचारों से सहमत और उनकी भाँति पीड़ित कई अन्य लोग भी अब उनके पक्ष में खड़े हो गये थे। हर अगली सुनवाई में उनके साथ जुड़ने वाले लोगों की संख्या में वृद्धि हो रही थी और धीरे-धीरे यह केस चर्चा के ज्वलन्त विषय के रूप में एक नया रूप धारण करता जा रहा था। दक्ष बनाम छद्म भिखारी का केस अब व्यक्तिगत न रहकर सामाजिक बन गया और जागरूकता अभियान के रूप में 'भिक्षावृत्ति के विरुद्ध एक आन्दोलन' खड़ा हो गया। अत्यधिक प्रसन्नता का विषय तो यह रहा कि 'भिक्षावृत्ति के विरुद्ध एक आन्दोलन' को आगे बढ़ाने वालों में एक बड़ी संख्या भिखारियों की थी। ये वे भिखारी थे जो परिश्रम से जीविकोपार्जन करते हुए स्वाभिमान के साथ जीना चाहते थे लेकिन आज तक उन्हें अपनी

जीविका के लिए रोजगार का अवसर नहीं मिल पाया था। इन भिखारियों ने छद्म भिखारी के विरुद्ध गवाही देकर दक्ष के पक्ष को और अधिक दृढ़ता प्रदान की।

अन्ततः छद्म रूप धारण करके लागों को ठगने के अपराध में कोर्ट ने उस भिखारी को दण्डित किया। इसके बाद प्रभात और दक्ष ने स्थानीय स्तर पर ईमानदार और परिश्रमी भिखारियों के लिए रोजगार उपलब्ध कराने की मुहिम शुरु की। उनके परिश्रम से कई गैर सरकारी संगठनों ने आगे आकर भिखारियों के लिए रोजगार उपलब्ध कराने में यथायोग्य सहयोग किया ।

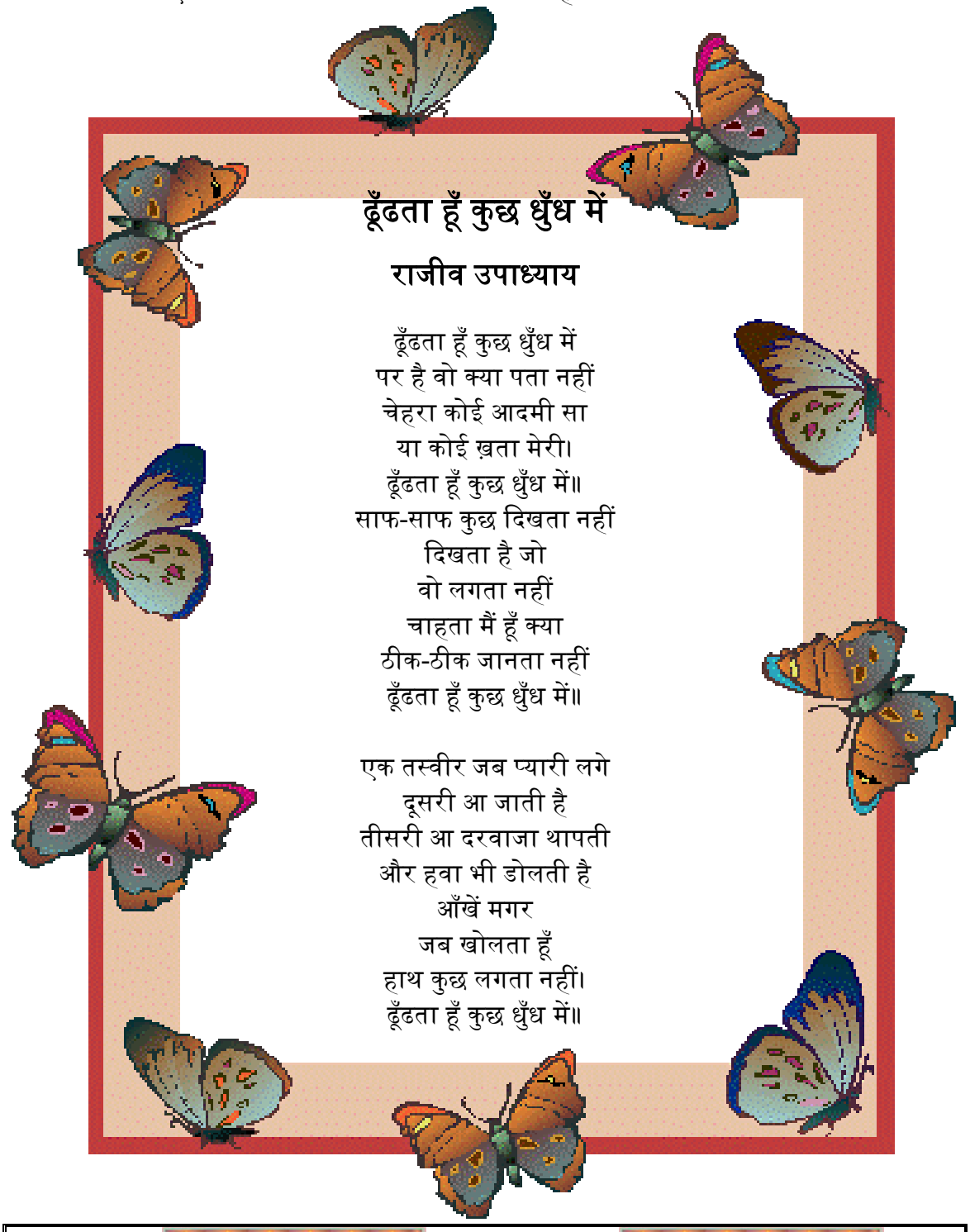

ढूँढता हूँ कुछ धुँध में

राजीव उपाध्याय

ढूँढता हूँ कुछ धुँध में
पर है वो क्या पता नहीं
चेहरा कोई आदमी सा
या कोई ख़ता मेरी।
ढूँढता हूँ कुछ धुँध में॥
साफ-साफ कुछ दिखता नहीं
दिखता है जो
वो लगता नहीं
चाहता मैं हूँ क्या
ठीक-ठीक जानता नहीं
ढूँढता हूँ कुछ धुँध में॥

एक तस्वीर जब प्यारी लगे
दूसरी आ जाती है
तीसरी आ दरवाजा थापती
और हवा भी डोलती है
आँखें मगर
जब खोलता हूँ
हाथ कुछ लगता नहीं।
ढूँढता हूँ कुछ धुँध में॥

अड़ी हुई टाँग

डॉ. नरेन्द्र कोहली

'हमें दिवाली में पटाखे नहीं चलाने चाहिएँ।' रामलुभाया ने कहा, 'हम तो स्कूली बच्चों को ले कर संसद के सम्मुख एक प्रदर्शन करने जा रहे हैं कि पटाखों पर पूर्ण प्रतिबंध होना चाहिए।'

'क्यों?' मैं ने पूछा, 'जाने कब से हमारी परंपरा है दिवाली पर पटाखे चलाने की। तुम उस को बंद कर देना चाहते हो।'

'परंपरा है तो क्या हुआ। बुरी चीज तो बुरी ही है।' वह बोला।

'क्या बुराई है?' मैं ने पूछा।

'अरे भाई जगह जगह पर आग लग जाती है। लोग जल जाते हैं।' वह बोला, 'लोगों की सुरक्षा के लिए आवश्यक है कि पटाखे बंद किए जाएँ।'

'जहाँ आग लगी है, वहाँ पटाखों की अवैध दूकानें थीं।' मैंने कहा, 'इस समस्या का समाधान पटाखों को वैध और सुरक्षित ढंग से बेचने की व्यवस्था करना है या पटाखों पर प्रतिबंध लगाना?'

'वे अवैध ढंग से तो बिकेंगे ही।' वह बोला, 'हमारी पुलिस उन से उत्कोच ले कर पटाखे बेचने देती है।'

'तो अपनी पुलिस को सुधारो।' मैंने कहा।

'वह संभव नहीं है।' रामलुभाया अड़ा रहा, 'पटाखे ही बंद करवाने होंगे।'

'रामलुभाया ! वर्ष भर में कितने स्थानों पर बिजली के शार्ट सर्किट से आग लगती है?' मैंने पूछा।

'कई जगह लगती है।' वह बोला, 'मेरे पास कोई आँकड़े नहीं हैं।'

'तो बिजली क्यों है इस देश में? विद्युत उत्पादन बंद कर दिया जाना चाहिए।' मैंने कहा।

'की न मूर्खता की बात।' उस ने मुझे डाँट दिया, 'बिजली में क्या बुराई है। लोग ही असावधान होते हैं तो दुर्घटनाएँ होती हैं।'

'कितनी बसें नदियों में गिरती हैं?' मैंने कहा, 'नदियाँ पाट दोगे अथवा उन पर बने पुल तुड़वा दोगे?'

'मुझे पागल समझते हो क्या? कहीं नदियाँ भी पाटी जाती हैं या पुल तोड़े जाते हैं।'

'पर लोग तो उस में भी डूब कर मरते हैं।'

'वह लोगों की मूर्खता है।' वह बोला, 'उन्हें उस का उचित उपयोग सिखाया जाना चाहिए।'

'सड़कों पर प्रतिदिन दुर्घटनाएँ होती हैं।' मैं बोला, 'रेल गाड़ियाँ भिड़ जाती हैं। विमान गिर पड़ते हैं। जलपोत डूब जाते हैं। तो क्या इन सब को नष्ट कर दिया जाना चाहिए?'

'तुम तो संसार को मध्ययुग के अंधकार में धकेल देना चाहते हो, जहाँ न सड़कें हों, न गाड़ियाँ, न रेलें और न विमान। न बिजली और न बिजली से चलने वाले यंत्र।'

'मैं किसी को पीछे धकेलना नहीं चाहता।' मैंने कहा, 'तुम ही तर्क दे रहे हो कि पटाखों से किसी की मूर्खता के कारण आग लग जाती है अथवा कोई झुलस जाता है तो दिवाली पर पटाखे बंद कर दिए जाएँ। मिठाइयों से पेट खराब होता है। मिठाइयाँ न खाई जाएँ। होली पर रंग न डाला जाए, उस से परेशानी होती है। तुम कोई त्यौहार मनाने भी दोगे?'

'तो हिंदू अपने त्यौहार ढंग से मनाते क्यों नहीं। हम तो सब को शिक्षित करना चाहते हैं।' वह बोला, 'सारे ईसाई स्कूल इस प्रदर्शन में हमारे साथ हैं।'

'वे तो रहेंगे ही।' मैंने कहा, 'तुम ईसाई नववर्ष पर मदिरापान और आधी रात की निशाचरी क्यों बंद नहीं करवाते। उस रात इतना हुल्लड़ और गुंडागर्दी होती है कि कोई भला आदमी सड़क पर से गुजर भी नहीं सकता।'

'ईसाई धर्म तो नहीं कहता कि मदिरा पीओ और लोगों से झगड़ा करो।' वह बोला, 'वह तो लोग ही पीने के शौक में वह सब कर बैठते हैं।'

'तो हिंदू धर्म ही कहाँ कहता है कि असावधान हो कर पटाखे चलाओ। स्वयं जलो और दूसरों को जलाओ।' मैंने कहा, 'क्रिसमस के दिनों में सारे यूरोप और अमरीका में कितनी दुर्घटनाएँ होती हैं। उन्होंने तो क्रिसमस मनानी बंद नहीं की।'

'तुम दूसरों के धर्म में टाँग अड़ा रहे हो।' उस ने मुझे घूर कर देखा।

'मैं तो उन की अड़ी हुई टाँग को उन की पाली में धकेल रहा हूँ।' मैं बोला, 'उन्होंने कैसे यह मान लिया कि उन्हें दूसरों के मामले में टाँग अड़ाने का विशेषाधिकार प्राप्त है। और तुम भी उन के बहकावे में आ कर इस प्रकार का मूर्खतापूर्ण अभियान मत छेड़ा करो। अपने मन को निर्मल करो और अपने नयनों को विवेक के जल से धो लो। नहीं तो तुम उन के पैसे से पलने वाले पिट्ठू और अपने समाज के शत्रु होने के पाप में चिरकाल तक दंडित होगे।'

दीपावली मंगलमय हो

प्रो. गिरीश्वर मिश्र

(कुलपति - महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय)

तिमिर हटे
ज्योतित हो हृदय
कलुष कल्मष कटे
सुरभित हो जन मन
सुख समृद्धि से भरे
देश का जीवन.

रावण

डॉ. एम. एल. गुप्ता 'आदित्य'

किसने फैलाई है ये झूठी खबर, कि रावण गया है मर..!

जो दस सिरों में था मौजूद, कितने सिरों में घुस गया है।
सोने की लंका का वासी, अब घर-घर पहुँच गया है।
भगवान ने किया था वध, इसलिए, हो गया अमर,
किसने फैलाई है ये झूठी खबर, कि रावण गया है मर..।

हर बरस देखो रावण का कद , कितना बढ़ता जाता है,
जो खाता था लाख-करोड़, वो लाखों करोड़ खा जाता है।
मीडिया में छा जाता, चौराहों पर उसके, लगते हैं पोस्टर,
किसने फैलाई है ये झूठी खबर, कि रावण गया है मर..।

वन में विचरनेवाले खर-दूषण, वनों को ही मिटा रहे हैं,
वृक्षों को काट-काट वहाँ, अट्टालिकाएँ बना रहे हैं।
वन्य-प्राणी जान बचाते, भाग रहे हैं, इधर-उधर ।
किसने फैलाई है ये झूठी खबर, कि रावण गया है मर..।

कलयुग के रावण की सेना, कल से शक्तिशाली है।
लंका से लद्दाख तक, उसने अपनी पैठ बना ली है।
बेबस और लाचार जन, आखिर जाए तो जाए किधर,
किसने फैलाई है ये झूठी खबर, कि रावण गया है मर..।

विभीषण भी भीतर ही भीतर, रावण-दल के साथ है,
घोटालों-षड्यंत्रों में, रहता अक्सर उसका हाथ है,
रामराज मिटाने को, वो जालिम कस रहा है कमर,
किसने फैलाई है ये झूठी खबर, कि रावण गया है मर..।

धर्म के ठिकानों पर भी, अब असुरों का ही डेरा है,
बसता था जहाँ धर्म कभी, वहाँ सर्वाधिक पाप का फेरा है,
वेष बदल कर साधू चोले में, दुष्कर्म रहे हैं कर,
किसने फैलाई है ये झूठी खबर, कि रावण गया है मर..।

पता लग रहा कुंभकरण ने, कितना चारा–कोयला खाया है,
बाँधों का पानी पी गया पापी, धरा को बंजर बनाया है.
कितने विचर रहे हैं अब भी, चहुँ ओर निशाचर,
किसने फैलाई है ये झूठी खबर, कि रावण गया है मर..।

कट्टरता मेघनाथ सी, और अहिरावण सी माया,
आई.एस.आई.एस. से दानव–दल ने कहर है बरपाया,
रावण की आतंकी सेना ने दुनिया में, मचा रखा है गदर,
किसने फैलाई है ये झूठी खबर, कि रावण गया है मर..।

देखा अपने भीतर तो वहाँ भी, छिपकर रावण-दल बैठा था,
कर्तव्य-स्वाभिमान को मेरे, दुष्ट अभिमान बना कर ऐंठा था,
कैसे राह भटका रहा था, मुझको ही हुई न खबर.
किसने फैलाई है ये झूठी खबर, कि रावण गया है मर..।

भगवान धन्वंतरी व यम पूजन का दिन धनतेरस

श्याम नारायण रंगा 'अभिमन्यु'

पाँच दिन के दीपोत्सव का आगाज धनतेरस से ही होता है। हिन्दू पंचाग के अनुसार कार्तिक बदी तेरस को धनतेरस के रूप में मनाया जाता है। धनतेरस आयुर्वेद के अधिष्ठाता भगवान धन्वंतरी का जन्मदिन है इस कारण यह दिन धनवंतरी जयंति के रूप में मनाया जाता है। माना जाता है कि जब देवताओं व दानवों ने समुद्र मंथन किया तो आज ही के दिन हाथ में औषधि कलष लेकर भगवान धन्वंतरी प्रकट हुए थे और इनको स्वास्थ्य का देवता माना गया और इसी रूप में इनकी पूजा हुई। इसी कारण भगवान धतवंतरी को आरोग्य का देवता माना जाता है। मनुष्य को अपने स्वस्थ शरीर व स्वस्थ मस्तिष्क के लिए भगवान धन्वंतरी की पूजा करनी चाहिए। प्रकाश पर्व का आज प्रथम दिन है। शास्त्रों के अनुसार धनतेरस के दिन शाम को घर के मुख्य द्वार पर यमराज के निमित्त एक अन्न से भरे पात्र में दक्षिण मुख करके दीपक रखने एवं यमराज से प्रार्थना करने पर असामयिक मृत्यु से बचा जा सकता है। ऐसा करने से दीर्घ जीवन व आरोग्य की प्राप्ति होती है। आधुनिक समय में डॉक्टर व चिकित्सा पेशे से जुड़े लोग भगवान धनवंतरी की विशेष पूजा अर्चना कर सकते हैं।

देवी लक्ष्मी धन की देवी है और धन की प्राप्ति के लिए स्वस्थ रहना भी जरूरी है और यही कारण है कि धन की देवी की पूजा से दो दिन पहले ही स्वास्थ्य के देवता की पूजा की जाती है।

पौराणिक कथा के अनुसार एक बार भगवान विष्णु माता लक्ष्मी के साथ पृथ्वी पर घूमने आए। कुछ देर बाद भगवान विष्णु ने लक्ष्मी को एक स्थान पर ही ठहरने का कह कर दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया। परन्तु माता लक्ष्मी ने भगवान विष्णु की आज्ञा नहीं मानी और उनके पीछे पीछे चल दी। कुछ दूरी पर चलने के बाद एक गन्ने का और एक सरसों का खेत मिला, माता लक्ष्मी सरसों के फूल से श्रृँगार करने लगी और गन्ना तोड़कर चूसने लगी। भगवान लौटे तो उन्होंने माता लक्ष्मी को गन्ना चूसते हुए देखा। इस पर भगवान विष्णु क्रोधित हो गए और माता लक्ष्मी को श्राप दे दिया कि जिस किसान का यह खेत है उसके यहाँ तुम रहो और बारह साल तक किसान की सेवा करो। ऐसा कहकर भगवान विष्णु अर्न्तध्यान हो गए और माता लक्ष्मी वहीं किसान के घर रह कर किसान की सेवा करने लगी। किसान बहुत गरीब था और किसान की ऐसी दशा देखकर माता लक्ष्मी द्रवित हो जाती हैं और उसकी पत्नी को देवी लक्ष्मी अर्थात् अपनी ही मूर्ति की पूजा करने को कहती है। किसान की पत्नी प्रतिदिन माता लक्ष्मी की मूर्ति की पूजा करती है और 12 साल जहाँ माता लक्ष्मी स्वयं वास करे वहाँ दरिद्रता कैसे रह सकती है। इस प्रकार माँ लक्ष्मी किसान को धन धान्य व सम्पत्ति से परिपूर्ण कर देती है। जब बारह साल पूर्ण हो जाते हैं तो भगवान विष्णु लक्ष्मी को लेने आते हैं पर वह किसान माता लक्ष्मी को जाने नहीं देता है। वह हठ कर लेता है और माता का दामन पकड़ कर रोक लेता है। जब भगवान विष्णु किसान को चार कौड़ियाँ देते हैं और कहते हैं कि तुम परिवार सहित गंगा स्नान करने जाओ और इन कौडियों को गंगा जल में छोड़ देना जब तक हम यहीं रहेंगे। किसान ऐसा ही करता है। जैसे ही किसान गंगाजी में कौडिया छोड़ता है गंगाजी के अंदर से चार हाथ बाहर निकलते हैं। किसान पूछता है कि ये हाथ किसके हैं तो माता गंगा कहती है कि ये हाथ मेरे हैं और तुम्हें जिसने ये कौड़ियाँ दी है वे भगवान विष्णु व माता लक्ष्मी हैं अतः तुम उनको अपने घर से वापस मत जाने देना वरना तुम वापस दरिद्र हो जाओगे। वापस आने पर किसान को भगवान विष्णु पूरी बात समझाते हैं और हठ नहीं करने का कहते हैं। तब माता लक्ष्मी किसान को कहती है कि अगर तुम मुझे रोकना चाहते हो तो कल धनतेरस है तुम

अपने घर को साफ सुथरा रखना और रात में घी का दीपक जलाना और मैं तुम्हारे घर आऊँगी उस वक्त तुम मेरी पूजा करना परन्तु मैं अदृष्य रहूँगी। किसान ने देवी लक्ष्मी की बात मान ली और उन्हें जाने दिया और बताई विधि से माँ लक्ष्मी की धनतेरस को पूजा की। ऐसा करने से उसका घर वैभव से सम्पन्न हो गया। इस प्रकार किसान प्रतिवर्ष माता लक्ष्मी की पूजा करने लगा। तब से धनतेरस को दीपक जलाकर माता की पूजा की प्रथा चली आ रही है।

धनतेरस पर यम की पूजा भी की जाती है और यम के नाम का दीपक जलाया जाता है। इस संदर्भ में भी एक पौराणिक कथा है जिसके अनुसार प्रचीन काल में हेम नाम का एक राजा था। राजा हेम को संतान के रूप में एक पुत्र की प्राप्ति हुई। राजा ने पुत्र की जन्मकुण्डली बनवाई और ज्योतिषियों व पण्डितों से अपने पुत्र के भविष्य के बारे में पूछा। राजा को पंडितों ने बताया कि जब आपके पुत्र का विवाह होगा उसके ठीक चार दिन बाद ही आपके पुत्र की मृत्यु हो जाएगी। ऐसा सुन राजा दुःख से व्याकुल हो उठा। कुछ समय बाद राजा ने पुत्र की शादी करने का निश्चय लिया। राजा की पुत्रवधु को इस बात का पता चला तो उसने अपने पति को अकाल मृत्यु से बचाने का निश्चय किया। राजा की पुत्रवधु ने विवाह के चौथे दिन अपने कमरे के बाहर गहने व सोने चाँदी के सिक्कों का और धन सम्पत्ति का ढेर लगा दिया और स्वयं अपने पति को रातभर जगाकर रखा। राजा की पुत्रवधु अपने पति को कहानियाँ और गाने सुनाती रही। मध्यरात्रि को यम रूपी साँप उसके पति को डसने के लिए आता है लेकिन वह उस धन सम्पत्ति के ढेर को पार नहीं कर पाता और राजकुमारी का गाना सुनने में मुग्ध हो जाता है। इस प्रकार सारी रात बीत जाती है और यम राजकुमार के प्राण लिए बिना ही वापस लौट जाता है। इस प्रकार राजकुमारी अपने पति के प्राणों की रक्षा कर लेती है। माना जाता है कि तभी से लोग लम्बी आयु प्राप्त करने व अकाल मृत्यु से बचने के लिए अपने घर के बाहर यम के नाम का दीपक जलाते हैं।

एक और प्रसंग के अनुसार एक बार यमदूतों से यमराज को कहा कि अकाल मृत्यु से हमारे मन भी पसीज जाते हैं और हम नहीं चाहते कि किसी की अकाल मृत्यु हो। यमराज ने कहा कि हम भी क्या करें विधि के विधान के आगे हमारी भी नहीं चलती और हमें अकाल मृत्यु जैसा अप्रिय काम करना पड़ता है। तब यमराज ने अकाल मृत्यु का उपाय बताते हुए कहा कि धनतेरस के दिन विधि विधान से पूजा करने से और दीपदान करने से अकाल मृत्यु से छुटकारा मिलेगा। अतः जहाँ और जिस घर में ऐसा पूजन और दीपदान होगा वहाँ अकाल मृत्यु का भय नहीं होगा। यहीं से धनतेरस के दिन धनवंतरी के साथ यमपूजन की प्रथा भी चालू हुई।

धनतेरस के दिन नया बर्तन खरीदने की लोक मान्यता भी जुड़ी है और धनतेरस के दिन लोग बाजारों से नया बर्तन खरीदते हैं। ऐसा माना जाता है कि भगवान धनवंतरी कलश लेकर प्रकट हुए थे और हाथ में कलश होने के कारण नया बर्तन खरीदने की परम्परा चालू हुई। परन्तु कुछ पंडितों का कहना है कि यह सिर्फ़ लोकमान्यता है पुराणों में नया बर्तन खरीदने से संबंधित कोई भी प्रसंग नहीं मिलता है। भगवान धनवंतरी के नाम के आगे धन लगा होने से यह परम्परा चली होगी। इस दिन शंख व आयुर्वेद के ग्रंथों के पूजन का भी महत्व माना गया है।

मौसम

श्रुति पाण्डेय
(दिल्ली विश्वविद्यालय की स्नातक छात्रा)

कहीं सड़क पर सरपट दौड़ती गाड़ियाँ
कहीं पत्ते उड़ाती ये आँधियाँ
कहीं हिमालय से बहती नदियाँ
कहीं रंग-बिरंगी हरी भरी वादियाँ

होने को तो होती हैं ये सदा ही
पर कभी लगती हैं बुरी, तो कभी अत्यन्त मनभावनी!
कहा करते हैं लोग अक्सर मौसम लुभाते हैं हमारा मन
पर क्या यह सच नहीं कि मन से ही बनते हैं ये मौसम?
मन खुश हो तो सारा जहाँ लगता है अपना
पर जब वह होता है शोकाकुल सारे जहाँ में छा जाता है अँधियारा
क्या हम दुनिया के अधीन हैं या दुनिया हमारी ही सोच के अधीन है
प्रकृति हमारी सोच बनाती है या हमारी सोच प्रकृति?
क्यों एक ही मौसम में कभी हमें फूल ही फूल नजर आते हैं
और अगले ही पल सिर्फ काँटें ही काँटें
देखने पर लगता है कि दुनिया शक्तिशाली है
पर सोचने पर एहसास होता है कि नहीं, सारी शक्ति तो हमारी है
तो क्यूँ न हम संसार को बदलने की जगह स्वयं को बदल लें
पत्थर से दीवारें बनाने की जगह मूर्तियाँ बनायें
विभाजन नहीं सबका मिलन ही हमारा मंत्र हो
ताकि हर मौसम ही वसंत हो
न किसी को किसी का डर हो, न किसी को कोई लालसा हो
यह सारी दुनिया अपने आप में ही स्वर्ग हो।

संयुक्त परिवार के बदलते परिवेश और नये सीमांत

कमला सिंघवी

इसे हम एक प्राकृतिक सिद्धांत कह सकते हैं, हमारे बदलते हुए सामाजिक परिवेश का एक अनिवार्य परिणाम मान सकते हैं, किन्तु यह एक सुस्पष्ट परिणाम अवश्य है कि वृद्ध हो रहे माता-पिता अपने परिवार के साथ नहीं रह पाते---और यदि रहते हैं तो अधिकांशतः कटुता और कठिनाई के बीच। मुश्किल यह है कि अलग रहकर भी पीढ़ियों के बीच सामान्यतः उस गहरी आत्मीयता, संवेदनशीलता और सहज प्रेम का निर्वाह नहीं हो पाता जो पीरिवारिक संबंधों के आदर्श की याद और धरोहर के रूप में शेष रह गया है।

पशु जगत में प्रकृति का यह नियम अक्सर देखने में आता है कि बच्चे जब तक बड़े नहीं हो जाते तब तक उनकी माँ और कई बार माँ-बाप दोनों बच्चों का लालन-पालन करते हैं, उनको अपनी सुरक्षा तथा आहार प्राप्त करने के तौर-तरीके सिखाते हैं। किन्तु स्वावलंबी होते-होते उनको अलग कर दिया जाता है और वे अपनी-अपनी जिन्दगी अलग-अलग बसर करते हैं।

किंतु मनुष्य समाज की संरचना का आधार था---परिवार, और परिवार की धुरी था---पति-पत्नी और बच्चों के प्रति उनका दायित्व। कबीलों से जब गाँव शहर और राष्ट्र बने तब भी परिवार का महत्व कम नहीं हुआ। संयुक्त परिवार की परिकल्पना पुरातन भारत की एक सामाजिक देन और उपलब्धि थी।

जब तक संयुक्त परिवार की रचना और प्रस्थापना का सामाजिक सामंजस्य बना रहा और उसमें सन्निहि सांस्कृतिक अवधारणा सुदृढ़ रही, संबंधों की मर्यादा से जुड़ी रही। तब तक परिप्रेक्ष और समस्याएँ दूसरी प्रकार की थीं। परस्पर प्रेम, निष्ठा, वफादारी और एक दूसरे के लिए त्याग व उत्कर्ष के श्रेष्ठतम उदाहरण हमें संयुक्त परिवार के इतिहास-पटल पर मिलते हैं। संयुक्त परिवार एक तरह का सामाजिक बीमा भी रहा। किंतु संयुक्त परिवार में भी कई कठिनाइयाँ और विसंगतियाँ उत्पन्न हुईं, पीढ़ियों के बीच रिश्ते विषम हुए और कई बार व्यक्ति की आजादी, महिलाओं और कनिष्ठ सदस्यों के स्वातंत्र्य पर आँच आती रही।

संयुक्त परिवार की परंपराएँ टूटीं। पहले संयुक्त परिवार का विस्तार अधिक था, फिर वह सीमित हुआ, दंपति और उस दंपति की संतान तक। हम सब उन सीमित संयुक्त परिवारों का भी विघटन देख रहे हैं। भारतीय परिवार परंपरा में इसे संधिकाल कहा जा सकता है। गाँवों में अभी भी कमोबेश संयुक्त परिवार की परंपरा चल रही है, किंतु शहरों में यह परंपरा संकटापन्न है।

कुछ अरसा पहले एक लेख कहीं पढ़ा था कि प्रौढ़ हो आए पुरुष भी अपनी माँ का पल्लू कभी नहीं छोड़ पाते, बल्कि सारी उम्र वे अपनी पत्नी की तुलना अपनी मां से करते रहते हैं। पति-पत्नी के बीच संबंधों में दरार के लिए पति की माँ पर दोष मढ़ते हुए और माँ नाम के प्राणी के प्रति अपनी शिकायत की खींचतान के साथ आगे बढ़ते हुए लेखिका अपनी यह अजीबोगरीब प्रस्थापना प्रस्तुत करती है कि यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि अपने द्वारा तैयार किए गए मर्द को एक पराई औरत के पास

सरकता देखकर अजीब तरह का खालीपन, चिड़चिड़ाहट, पराजय और उदासी माँ नाम की औरत में पनपने लगते हैं। मुझे लगता है कि मां नाम के व्यक्ति को लेखिका ने समझा ही नहीं और अधकचरे मनोविज्ञान का सहारा लेकर माँ-बेटे के रिश्ते को कठघरे में खड़ा कर दिया।

पश्चिम में अकसर पति-पत्नी की आपसी तकरार के लिए पत्नी की माँ को दोषी ठहराते हुए कहा जाता है कि पत्नी अपनी माँ की तरफ जब ज्यादा तवज्जो देने लगती है तब पति को अच्छा नहीं लगता और उसकी उकताहट पति-पत्नी के बीच मतभेद अंकुरित करने लगती है।

मुझे आश्चर्य होता है कि आज की आधुनिक नारी एक कमाऊ समझदार और दो तीन बच्चों के बाप को अपनी माँ की गोद में सिर रखे देखकर परेशानी महसूस करती है। यदि प्रौढ़ और परिपक्व आयु का व्यक्ति अपनी माँ के प्रति आदर और उसके वात्सल्य की डोर में अपने को बँधा पाता है तो यह आधुनिक नारी सीधे सिगमन फ्रायड की पुस्तकों में संदर्भ ढूँढने चल देती है। इसे एक त्रासदी नहीं तो और क्या कहा जाए। वास्तव में इस प्रकार की सोच ही सास-बहू के रिश्ते को विषाक्त करने के लिए जिम्मेदार है।

पश्चिम में तो अधिकांश लड़के-लड़कियाँ वयस्क होते-होते अपने माँ-बाप का घर छोड़कर अलग रहने लगते हैं और अपने जीवन साथी की तलाश करते हैं; किंतु भारत में आज भी बेटे के विवाह और पुत्रवधू के विषय में माँ ही सपने के बंदनवार सजाती है। भारत में बेटे की शादी की ललक माँ को अनुप्राणित करती है। माँ अपने बेटे की शादी के मौके पर खुशियों से झूम उठती है। यह दूसरी बात है कि बेटे की शादी के बाद कई ऐसे कारण और बन जाते हैं, जिनके फलस्वरूप सास और बहू के संबंधों में दरार पड़ने लगती है, मन मुटाव हो जाता है, गलतफहमियों की विष-बेल बढ़ने लगती है। उन स्थितियों में दोष बहू का भी हो सकता है, सास का भी हो सकता है या फिर जैसा कि अधिकांशतया होता है, सास और बहू दोनों ही दोषी हो सकती हैं। किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि बेटे कृतघ्न होकर अपनी माँ का प्यार और दुलार भूल जाएँ या अपनी पत्नी के प्रति उनका जो कर्तव्य है, उसकी उपेक्षा करें।

हमारी परंपरा में माँ को आदर और श्रद्धा का स्थान दिया गया है। वह इस आदर और श्रद्धा की अधिकारी भी है। क्योंकि हर पारिवारिक इकाई की धुरी होती है माँ। यदि बेटा और बहू माँ से अलग रहते हैं तो उनके बीच के मतभेद और मनभेद के लिए माँ को दोष देना न्यायसंगत प्रतीत नहीं होता। ऐसे लोगों के कितने ही विवाह-संबंध टूटते हुए नजर आते हैं, जिसके लिए माँ को मुजरिम करार देना एक निहायत गैर जिम्मेदाराना व्यवहार है। ज्यादातर तो देखने में यह आया है कि विवाह के टूटने में पति और पत्नी का मतभेद ही विशेष कारण बनता है। कई बार यह मतभेद रिश्तों की मर्यादा को न समझने के कारण या बहू तथा उसके माँ-बाप के हावी होने के कारण भी होता है।

सास-बहू के रिश्तों का विषय बहुत उलझन भरा है। एक तरफ दहेज की माँग के कारण ये रिश्ते विषम हो जाते हैं तो दूसरी ओर संयुक्त परिवार में सबके साथ हिल-मिलकर रहने की प्रवृत्ति के अभाव में चारों ओर तनाव-ही-तनाव नजर आता है। विसंगति इसमें नहीं है कि बेटा अपनी माँ को प्यार करे या उसे आदर दे। विसंगति इसमें है कि बहू अपने पति की माँ का तिरस्कार करे या उसे आदर न दे। बेटे का माँ को प्रेम और आदर देना स्वाबाविक है, किंतु बहू का सास को स्नेह और आदर देना घर

को सुखी बनाने के लिए अति आवश्यक है। यदि बहू माँ को आदर दे और पति को प्यार तो शायद घर स्वर्ग बन सकता है।

वस्तुतः आजकल कई लड़के शादी के बाद या पैरों पर खड़े होने लायक होते ही अलग रहने लगते हैं। अकसर यह होता है कि अलग होने की बात तब उठती है जब पति-पत्नी को लगता है कि अब वे स्वावलंबी हो गए हैं और तब उन्हें माता-पिता भार-स्वरूप लगने लगते हैं। इसके कुछ विशेष कारण होते हैं, जिसमें बहू की नकारात्मक भूमिका ही प्रमुख होती है। शायद बहू को तब यह लगने लगता है कि सास-ससुर के साथ रहने में उसकी स्वतंत्रता पर अंकुश लग सकता है, उसकी स्वतंत्रता सीमित हो जाती है। अपनी सास के साथ अपने मतभेद और दृष्टिकोण के कारण सास-ससुर पर पति की आय का कोई भी खर्चा हो तो वह उसे अप्रिय लगने लगता है। वह समझती है कि जब उसका पति इतना कमा रहा है तो क्यों नहीं वह अपने ऊपर अधिक खर्च करे, क्यों नहीं वह अपने पीहर के रिश्तेदारों को और मित्रों को बिना सास-ससुर को बताए उपहार दे, क्यों नहीं वह अपनी जिन्दगी अपने तरीके से जिए। उसे अपने सास-ससुर और अपने पति के भाई-बहन पर हो रहे खर्च नहीं सुहाते। ले-देकर वह मौके-बे मौके पति के सामने एक ही राग अलापने लगती है कि मुझे अलग होना है। एक अघोषित शीतयुद्ध इस प्रकार प्रारम्भ हो जाता है। जब-तब पत्नी कोपभवन की मुद्रा और मूड अपना लेती है। अपने बाग्बाणों से पति और सास-ससुर को इस प्रकार आहत करने लगती है कि संबंधों के आधार चरमराने लगते हैं।

बहू यदि अपने पति और बच्चों को लेकर अलग घर बनाना चाहे तो उसके लिए पति के माँ-बाप से झंझट करना क्यों अनिवार्य हो जाता है, यह बात मनोविज्ञान का प्रश्न बनकर उपस्थित होता है।

सौ बातों की एक बात यह है कि जब अपनी युवावस्था में बहू-बेटे आर्थिक रूप से स्वावलंबी हो जाते हैं तो उनको माँ-बाप बहुत कुछ गैर-जरूरी लगने लगते हैं। बेटे का रुझान अपने माँ-बाप के प्रति कुछ भी हो, बहू को अक्सर संयुक्त परिवार का अनुशासन अमान्य ही रहता है। ऐसा भी होता है कि कभी माँ-बाप की बढ़ती उम्र में उनकी अस्वस्थता से आशंकित होकर बहू अलग रहना अधिक पसंद करती है, ताकि सेवा सुश्रुषा का भार उस पर कभी न पड़े।

किंतु मूल बात यह है कि सामाजिक संस्कार बदल रहे हैं, पीढ़ियों के बीच नए प्रकार की दूरियाँ उभर रही हैं। और संयुक्त परिवार की संस्कृति का स्वार्थपरक जीवन-शैली के कुठार से मूलोच्छेद हो रहा है। अब हम लाख भारतीय संस्कृति और मूल्यों की दुहाई दें, संयुक्त परिवार की परंपराएँ तो टूट ही चुकी हैं; किंतु उनकी जगह कोई ऐसी मुकम्मिल व्यवस्था हम नहीं बना सके हैं जो उन परंपराओं का स्वस्थ विकल्प बन सके। एक ओर तो हमारे समाज में आर्थिक विपन्नता है और वह आर्थिक विपन्नता बढ़ती हुई उम्र की बीमारी और बेबसी को लगभग असाध्य बना देती है। दूसरी ओर मुद्रास्फीति के कारण पेंशन सर्वथा अपर्याप्त हो जाती है। फिर आर्थिक सम्पन्नता कभी माँ-बाप के प्रति सहज प्रेम और पुत्र-प्रेम की ललक का स्थान नहीं ले सकती। पश्चिम के जीवन दर्शन से प्रभावित और उसी प्रवाह में तिनके की तरह बह जाने वाली मानसिकता को क्या कहिए कि जो पुत्र के सहज स्नेह और माँ-बाप के सहज वात्सल्य पर भी आनन-फानन ऊल-जलूल प्रश्नचिन्ह लगा देती है।

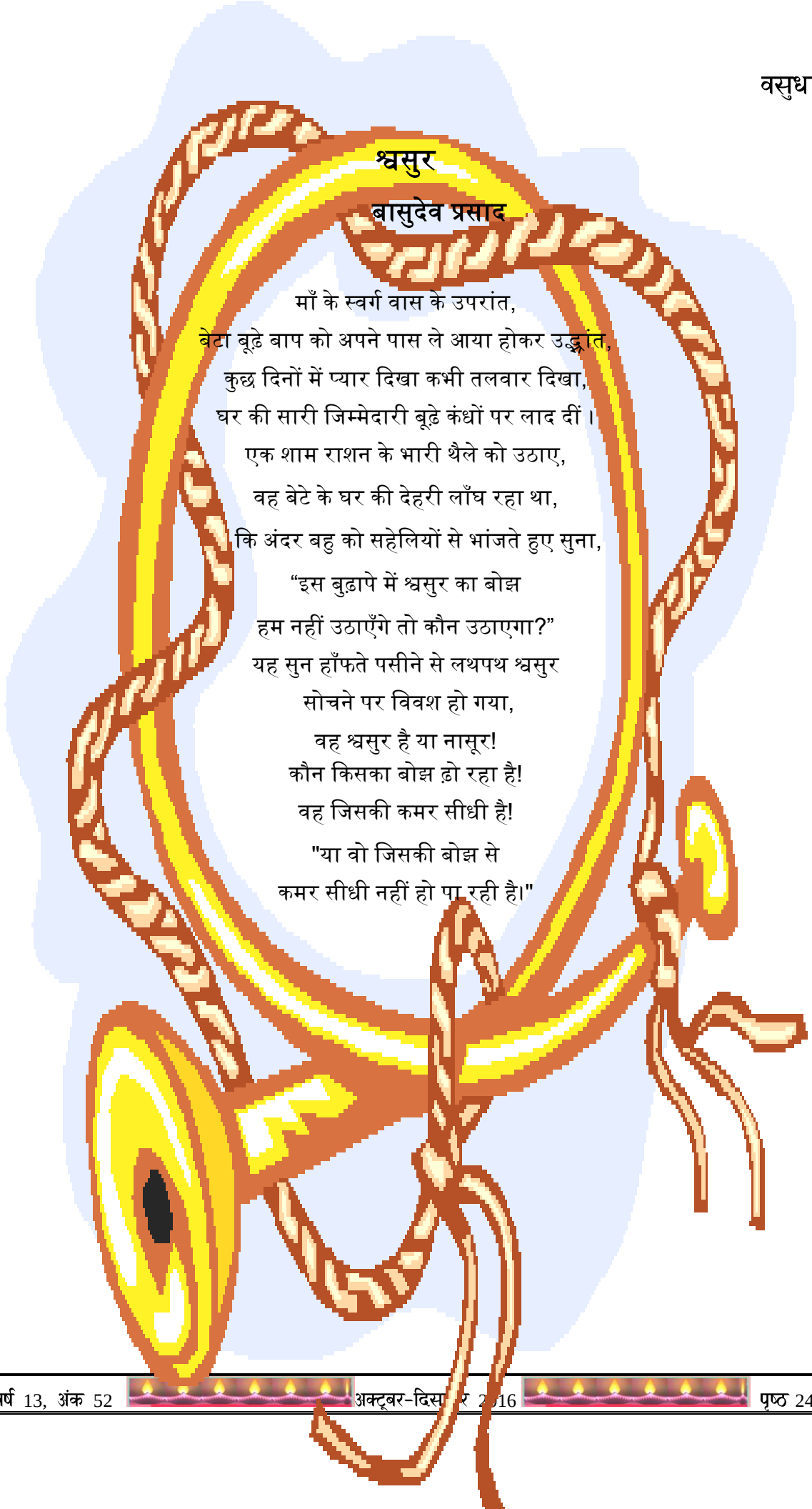

श्वसुर

बासुदेव प्रसाद

माँ के स्वर्ग वास के उपरांत,
बेटा बूढ़े बाप को अपने पास ले आया होकर उद्भ्रांत,
कुछ दिनों में प्यार दिखा कभी तलवार दिखा,
घर की सारी जिम्मेदारी बूढ़े कंधों पर लाद दीं।
एक शाम राशन के भारी थैले को उठाए,
वह बेटे के घर की देहरी लाँघ रहा था,
कि अंदर बहु को सहेलियों से भांजते हुए सुना,
“इस बुढ़ापे में श्वसुर का बोझ
हम नहीं उठाएँगे तो कौन उठाएगा?”
यह सुन हाँफते पसीने से लथपथ श्वसुर
सोचने पर विवश हो गया,
वह श्वसुर है या नासूर!
कौन किसका बोझ ढ़ो रहा है!
वह जिसकी कमर सीधी है!
"या वो जिसकी बोझ से
कमर सीधी नहीं हो पा रही है।"

नवजात

पीयूष कुमार पाचक

दीपक आज भी कई लोगों के बारे में सोचने को मजबूर हो जाता है। जिन्होंने गलतियों के बाद भी अपने जीवन में कोई सुधार नहीं किया उन्हें कोई हक नहीं हैं नव जीवन को संसार दिखा कर छोड़ देने का। क्यों ऐसी गलतियाँ जानबूझ कर करते है? कैसे उन्हें यह सब करने का साहस मिल जाता है।

बात उस समय कि है जब दीपक एक छोटे से कॉलेज का नया-नया छात्र था। मानवता के मेल-जोल में कभी कभार इतना डूब जाता था कि कुन्तक के समान लोग उसकी उक्ति को वक्रोक्ति बना देते थे। पर इन सब से उसे कोई फर्क नहीं पड़ता था। कहानी का मन्तव्य तो आप अन्त में जान पायेंगे, पहले कुछ वाक्यात को पढ़ लिया जाए जो सम्भवतः कहानी के लिए तो नहीं हैं पर मुझे वो किसी न किसी रूप में मानव जीवन दर्शन से जुड़े हुए लगते हैं।

मैं आज काफी उदास था, कारण तो ज्ञात नहीं पर मन की थोड़ी उलझन को साफ करने का कोई नायाब तरीका मुझे नज़र नहीं आ रहा था। चलो, जीवन में कभी हँसी तो कभी उदासी का होना स्वाभाविक है। यदि ये दोनो न हो तो मानव क्या पता क्या से क्या हो जाए।

मैं बात कर रहा था उस दिन की जिस दिन मेरे मानस पटल पर शायद कोई पुरानी बात फिर से उभर आई थी। मिल्टन को जब मैं पढ़ रहा था तब शब्दों के मसीहा जॉन सार्त्र का ख्याल क्यों नहीं आएगा। यह ख्याल आना कितना स्वाभाविक था। आप इस बात को तब जान पाते जब आप मेरी तरह थोड़े दार्शनिक ढ़ंग से सोचते। मैं आपको यहाँ किसी दार्शनिकता के बंधन में बाँधने की गुस्ताख़ी नहीं कर रहा हूँ वरन केवल मानव चिन्तन के यथार्थ से पहचान कराने का वैविध्य ढूँढ रहा हूँ। चलो, बहुत जान चुके जीवन के इस दार्शनिक पथ को अब आगे बढ़ते हैं। आखिर कहानी तक तो पहुँचना ही पडेगा अंत तक।

सर्दी का मौसम कितना खुशनुमा होता है। गर्म कपडों का लिबास और साथ में गर्म पकवान दोनों ही सहजता से इस मौसम में मिल ही जाते हैं। जीवन की भाँति। रात के ठीक नौ बजने से कुछ क्षण पूर्व, जब दीपक अपने कमरे में बैठा शायद किसी किताब को टटोल रहा था कि पीछे से आवाज आई, "दीपक!मैं चाचा के यहाँ जा रही हूँ, घर का पिछला दरवाजा बन्द कर देना, आने में देर हो सकती है।"

यह आवाज कभी-कभी ही इतनी मधुर लगती थी। बाकी तो कौवे की तरह कर्कश।

दीपक आनन-फानन में उठा, चूँकि बाहर काफी ठण्ड थी अतः पिछले दरवाजे को जल्दी-जल्दी बन्द कर पुनः अपने कमरे में आकर पढ़ने में तल्लीन हो गया। किताब पढ़ते-पढ़ते कब उसकी आँख लगी, चाचा के घर से दीदी का कब आगमन हुआ इसका उसे अहसास तक नहीं हुआ। वहीं निढाल होकर टेबल को बिस्तर और किताब को तकिया बना डाला। जब करवट बदलते वक्त पेपर वेट ने गुस्ताखी दिखाते हुए टन-टन-टन की आवाज लगाई तब जाकर नींद हवा-हवाई हो गई। टेबल पर रखा पानी का गिलास टेबल के इर्द-गिर्द, टुकड़ों-टुकड़ों में विभाजित होकर अपनी पहचान खो चुका था और साथ ही उसमें बचा हुआ पानी आतंकवाद की तरह फ़र्श पर फैल रहा था।

दीपक ध्वनियोजक विपल्व के विकराल स्वर से उछल पड़ा, जैसे अचानक किसी तीव्र ध्वनिनाद से सहमा हुआ हो। आनन-फानन में इधर-उधर देख कर, टेबल के पास पड़े पुराने चीर से उस आतंकवाद व कांच के टुकडों का जल्दी से सिरोद्धार कर दिया।

जब वह उन बिखरे टुकडों को रद्दी कागज में लपेट, पिछले दरवाजे की तरफ बढ़ा, जो कुछ घण्टो पहले उसके द्वारा ही बन्द किया गया था तब घर के पीछे की बत्ती गुल थी। उसने उसे जगमगाहट में लाने का प्रयास नहीं किया। दबे पाव उस तिमिर में ही धीरे-धीरे आगे बढ़कर उसे पास वाले नाले में फेंकने ही वाला था कि सहसा दीवार के पास एक किलकारी सुनाई दी। दीपक अब तो डर गया था। उसे लगा जैसे बचपन में नानी-दादी की वो भूतियाँ कहानियाँ आज हकीकत में तांडव रूप लेने वाली थीं।.....युवा कितना डरपोक हो जाता है, इससे अच्छा तो बचपन ही ठीक था, जिसमें साँप, भूत, आदि का डर तो नहीं लगता। उस ख्याल को दबाकर वह डर के मारे दबे पाँव घर के अन्दर घुस गया, और कान लगाकर उस आवाज को पुनः सुनने का प्रयास करने लगा। एक-दो पल बाद फिर वही दबी ध्वनि उसकी श्रवणेन्द्रियों ने ग्रहण की, परन्तु अब वो कुछ मन्द हो गई थी।

डर के मारे दीपक दबे-पाँव दीदी के कमरे तक पहुँच तो गया, पर उन्हें जगाने की इच्छा उनके भय और आवाज के डर से कचूमर बन गई। थोड़ी देर वहीं ठिठुरा रहा। मन में ख्याल आया कि बिस्तर को गाढ़ा ओढ छिप जाऊँ, जिससे वह ध्वनि पुनः मुझ तक नहीं पहुँच सके। कदम धीरे-धीरे पीछे लेता वह अपने कमरे की तरफ रूख कर ही रहा था, कि अँधेरे में उसका हाथ डायनिंग टेबल पर पड़े बरतनों से जा टकराया और सारे किए कराए पर पानी फिर गया। अब तो सामत आ गई उसकी, डाट तो खानी ही पड़ेगी। दीदी की तंग निद्रा अब भंग हो चुकी थी, उन बरतनों की खनन-खनन से।

दीदी ने दरवाजा खोलने से पहले ही कहा, 'किसकी सामत आ गई है, इतनी रात को कौन है, श्वेतप्रकाशपट्टिका के जगमगाहट से पहले उसने धीरे से कहा, 'दीपक तुम!' वह सहमा-सा वहीं डायनिंग टेबल के पास वाले कोने में खड़ा रहा। बिना किसी प्रत्युत्तर के।

'क्या हुआ दीपक, इतनी रात को भूख लग गई, पहले से पेट भरकर नहीं खा सकते, रात में दूसरों की नींद खराब करते हो। जाओ अन्दर गरम कैबिज पकोड़े पडे हैं, खा कर सो जाओ। और हाँ! अब बरतन मत बजाना काफी देर बाद तो नींद आई है। और रात में लाइट जलाकर इधर-उधर टटोला करो, वैसे भी काफी डरपोक हो।' वह जानती थी कि वह काफी डरता है अँधेरे से। इतना कहकर अपने कमरे की तरफ मुड़ी ही थी कि दीपक ने मन्द स्वर में कहा, 'दी..मुझे डर.....। वो..... कुछ अजीबो-गरीब आवाज़ें आ रही हैं।'

दी ने कहा 'कहाँ, दरवाजे के अन्दर से?'

दीपक ने कहा 'नहीं, उस पिछले नाले से।'

फिर दी ने जैसे डाँटते हुए कहा, 'तुम रात में पीछे गए थे, नींद नही आती क्या, फिर कहते हो डर लगता है। जाओ, कोई आवाज नहीं आ रही, आंख बन्द कर सो जाओ, रात में भटकते क्यों हो, निशाचर की तरह। यकायक बहुत सारे वाक्य दी ने फटाफट कह डाले।...दीपक उन्हें कैसे बताता कि वह गिलास के टुकडों को उनके भय से नाले में डालने गया था।

सहसा उसके कानों ने वो आवाज पुनः ग्रहण की। उसने दी से कहा, 'रूको! मैने अभी-अभी वो वापस सुनी, आप कान दो आपको भी.....।'

दी उसे साथ लेकर पीछे वाले दरवाजे से नाले की ओर बढ़ ही रही थी की अचानक वो आवाज पुनः ध्वनित हुई। अब तो उसके कदम भी सहम गए। उसने कहा, 'दीपक, यह तो किसी बच्चे के रोने की आवाज है, जा अन्दर से टॉर्च ले आ, अभी देखते हैं।..और सुन, लाइट ऑन कर देना ऊपर वाली।'

उसने भागकर तुरन्त सारी लाइटें ऑन कीं, और दी के आदेशानुसार टॉर्च भी ले आया।

दी! उसके आगे-आगे और वह पीछे-पीछे, पर डर तो साथ ही था। दी ने आवाज का पीछा करना प्रारम्भ किया। वह भी पीछे-पीछे चलता रहा। आवाज अब केवल ऊँ-ऊँ में तब्दील हो चुकी थी। उसने दी का ध्यान बाँटते हुए कहा 'इधर देखो, शायद इधर से.....।'

दी ने टॉर्च को इधर-उधर घुमाया, पर नाले के किनारे के पास वाले पत्थर से वो प्रकाश टकराकर रिफलेक्स हो रहा था। कहीं कुछ नज़र नहीं आ रहा था। दी ने पुनः आवाज सुनी, अबकी बार उनका अनुमान सही जगह पर था। उन्होंने दीपक को टॉर्च थमाते हुए गन्दे नाले को पार किया और टॉर्च उसकी तरफ फ़ेंकने को कहा। अब तक वह ध्यानमग्न दी की निडरता के बारे में सोच रहा था। उन्होंने पुनः जोर से कहा –'दीपक, टॉर्च फेंको।' उसने टॉर्च को जोर से फ़ेंका, दी ने उसे चमचमाती रोशनी के सहारे अपने हाथों में लपक लिया। उसने मजाक के मुड से कहा –'गुड कैच दी..।'

दी ने उसे लताड़ते हुए कहा 'जोकर, नालायक, कान लगा, यह मजाक का समय नहीं है।'

उसने कहा 'दी, उस पत्थर के पीछे से।'

दी ने जैसे ही टॉर्च उस पत्थर के पीछे दौड़ाई, वो ज़ोर से चिल्लाई, 'हाय राम!'

वह नाले के दूसरे किनारे खड़ा था, उसने कहा 'क्या हुआ'

दी के स्वर भीगे हुए थे। उन्होंने क्या कहा वह स्पष्ट सुन नहीं पाया।

उसने फिर से कहा 'दी, क्या हुआ? कौन है वहाँ?'

दी ने टॉर्च को मुह में पकड़ रखा था, और दोनों हाथों में एक नवजात शिशु को उठाए खड़ी थी। उस दृश्य को देख कर उसके रोंगटे खड़े हो गए। उसे चिन्ता हुई कि दी अब नाला कैसे पार करेगी।

दी ने टॉर्च एक हाथ में लेते हुए कहा 'घर से टावल ले आओ, और हाँ सुनो, मेरा मोबाइल लाना मत भूलना, बच्चे की साँसे अभी चल रही हैं। काफी ठण्डा है। भाग कर जाओ, सुरेश को साथ लेते आना, शायद हमें अस्पताल जाना पड़े।'

तब उसे उस तमस रात में भी भागना पड़ा, निडर बनकर। आनन-फानन में टावल, छोटा कम्बल, सब उठा उसने सुरेश को ज़ोर से आवाज लगाई –'दादा, उठो, दी बुला रही है, बच्चा....।' उसकी साँसे फूली हुई थीं । सुरेश ने उठते हुए कहा 'क्या बच्चा!.. क्या हुआ बताओ?'

वह भागम-भाग में इतना ही कह सका और हवा की तरह वहाँ से रफूचक्कर हो गया। दी नाले के पास सर्दी में ठिठुरी हुई उस नवजात को अपने सीने से लगाए प्रतीक्षा कर रही थी। दीपक टावल देते हुए बोला, 'लो।' उन्होंने उस नवजात को टावल में लपेटते हुए पूछा 'सुरेश आया? उसने कहा, 'आ रहें होंगे। इतने में सुरेश उसका पीछा करते हुऐ नाले के पास आ चुका था। उसने आते ही कहा 'क्या हुआ, तुम दोनों रात को इस तरह क्यों भागे-भागे आए, क्या बात हो गई? उस समय शायद उसने दी के हाथों की ओर गौर से नहीं देखा, वरना समझ जाता।

दी ने सुरेश से कहा 'गाडी ले आओ हमें अभी अस्पताल चलना होगा।' दीपक को अपना मोबाइल देते हुए कहा 'चाचा को फोन करो वो अस्पताल में ही हैं क्या' उसके चाचा पास के अस्पताल में मेल नर्स थे। उसने फोन किया, एक-दो रिंग के बाद चाचा ने फोन उठाया और उसके बोलने से पहले ही बोले 'हाँ बेटा, क्या बात हो गई, इतनी रात को फोन किया? बोलो।'

उसने चाचा को अस्पताल आने की खबर दी, पर केवल सूचनार्थ। सारी बात नहीं बताई और फोन काट दिया। चाचा ने पुनः घन्टी की। प्रत्युत्तर में उसने कहा 'चाचू, मैं अस्पताल आ कर सारी बात बताता हूँ।'

नाले से अस्पताल का रास्ता महज 20/22 मिनट का था। सुरेश गाडी लेकर आ ही गया। वे तुरन्त तेज़ रफ्तार से गाडी लेकर अस्पताल पहुँचे, महज 15 मिनट में ही दूरी तय हो गई। चाचा अस्पताल के गेट पर उनका इन्तजार कर रहे थे। वहाँ पहुँच कर दी ने चाचा को सारी बात बताई और बच्चे को उन्हें सौंपते हुए कहा 'चाचा देर मत करों, न जाने कब से पड़ा था नाले के पास, ठण्ड में।'

चाचा ने बच्चे के उपचार का सारा जिम्मा लेते हुए कहा –'ठण्ड भी काफी है, तुम चाय लो। मैं गरम चाय के लिए केन्टीन में फोन कर देता हूँ, अभी आ जाएगी।'

अस्पताल शान्त था, सारे मरीज कम्बलों में दबे पडे थे और उसके साथ वालों में से इक्के-दूक्के व्यक्ति अभी-भी जग रहे थे। जो उनके पास आकर पूछ रहे थे, किसका बच्चा? कहाँ मिला? ऐसे प्रश्न आम तौर पर होने स्वभाविक थे। परन्तु प्रत्युत्तर किसी के पास नहीं था, था तो केवल एक उत्तर, पता नहीं किसका है, नाले के पास पड़ा मिला था। चाचा ने बच्चे का उपचार प्रारम्भ कर, सूचना दी "बच्चा स्वस्थ है, अच्छा किया जो समय पर लेकर पहुँच गए, वरना....। अब तुम घर जाओ, सवेरे आना।"

उन्होंने चाचा से विदा ली और अपने घर की ओर निकल पड़े। रात में किसको नींद का रसास्वादन हुआ होगा, किसी को पता नहीं, क्योंकि सवेरे की रोशनी खिलने से पहले ही वे गाडी में सवार थे, अस्पताल के लिए।

अंशुमाली के उदय होने से पहले वे अस्पताल में दाखिल हो चुके थें। वहाँ कुछ लोग नींद को त्याग चुके थे, तो कुछ त्यागने के प्रयास में। डॉक्टर जो रात भर अस्पताल में थे, वो भी वहाँ से निकल रहे थे। अभी-अभी आए मेलनर्स, काउण्टर की मेज-कुर्सी को ठीक कर रहे थे। सफाईकर्मी स्वच्छता का काम करने में व्यस्त दिख रहे थे। चाचा के कहीं दिखाई नहीं देने पर दी ने एक मेलनर्स से जाकर पूछा 'मि. हंसराज जी कहाँ मिलेंगे।' उसने कहा 'एम.जी.एच. में, वो रात को ही एक नवजात बच्चें के उपचार हेतु जोधपुर चले गए।'

सारे दिन चाचा के मोबाइल से सम्पर्क नहीं होने से उनका मन विरहणी के वियोगावस्था की भाँति काफी उदास और सहमा हुआ था। कब चाचा से बात हो और कब समाचारों से रू-ब-रू हो.... इसी बीच कई बार पुलिस ने आकर उन बच्चों के बयान लिए। कैसे सुना? कहाँ मिला? किसका है? किसी को बच्चा फेंकते हुए देखा क्या? आप वहाँ क्यों गए थे? आदि-आदि। सी.एच.एम.ओ ने शहर के सारे अस्पताल में उस रात हुई डिलेवरी की रिपोर्ट मँगवाई, पर नतीज़ा कुछ नहीं निकला।

रात के ठीक दस बजे लौहपथ-गामिनी के हार्न ने सबका ध्यान तोड़ा। दीपक यह सोच कर कि शायद चाचा आ गए होंगे इस में, घर की छत पर चढ़कर प्रतीक्षा करने लगा। यह प्रतीक्षा फलोप्रद नहीं रहीं, लौहपथगामिनी के बिना रूके द्रुतगति से गुज़रने की आवाज से वह समझ गया की अब इन्तजार करने की बजाय अपने शयन कक्ष में जाकर थोड़ा आराम किया जाए।

दूसरे दिन की दोपहर तक का समय लगभग इसी तरह इन्तजार में ही गुज़रा। इसी बीच कई बार चाचा से सम्पर्क साधने की नाकाम कोशिशें जारी थीं और अस्पताल व पुलिस स्टेशन के चक्कर भी। अचानक दीदी के मोबाइल की पुरानी रिंग टोन बजने से कुछ होने न होने का आभास हुआ। फोन पर चाचा थे, उन्होंने निकीता को धन्यवाद देते हुए कहा 'शाबाश मेरे बच्चे!' आज तुम्हारी वजह से एक नवजात की जान बच गई, वरना लोग न जाने ऐसे कितने नवजात शिशु को यूँ ही मरने के लिए छोड़ जाते हैं।' चाचा उसे अस्पताल के शिशु हेल्थ-केयर को सौंप कर दूसरे दिन आने की बात कह रहे थे। उन्होंने बताया कि कई बालगृह संचालक और कई एन.जी.ओ.वाले आए थे वहाँ, उस नवजात की

जिम्मेदारी लेने, पर उन्होंने मना कर दिया। सबके चेहरे पर थोड़ी खुशी थी और थोड़ा दुःख। कारण आप स्वयं जानते है।

उसी दिन प्रख्यात न्यूज एडिटर गोपालमाली का लेख दोपहर के दैनिक समाचार पत्र के अन्दर मोटे-मोटे अक्षरों और रंग-बिरंगे मेल-जोल में दिखाई पड़ रहा था। प्रकरण था "आज फिर शर्म सार हुई मानवता" पर क्या असर पड़ता है, इस प्रकार के लेखों या कहानियों का, अगर सभ्य समाज या युवा इनसे प्रेरणा न ले।

अब तक कोई खबर नहीं लगा पाई सरकार और पुलिस, उस नवजात को जन्म देने वाले की। और न किसी ने दावा किया, उसके अपने होने का। समय का चक्र तो इन सब का इन्तजार नहीं करता केवल परिक्रमण ओर परिभ्रमण के साथ गतिमान रहता है।

चौदह वर्ष हो चुके 'किरण' आज स्वस्थ और सहज जीवन जी रही है। उसे ज्ञात नहीं कि वह किसका पाप है? और किसका फल। वह जीवन को अपने अंदाज से जी रही है। क्योंकि चाचा और उनके परिवार ने कभी उसे पराये होने का एहसास होने ही नहीं दिया। वह तो खुश है चाचा की लाडली सब की सयानी। एक नया जीवन व नये पालनहार के साथ।

आज फिर चौदह-पन्द्रह वर्षों के बाद वह बात तब ताजा हुई, जब रात को शहर से लौटते वक्त मेरी श्रवणेन्द्रियों ने सुना था...."यह नवजात शिशु कौन छोड़ गया यहाँ।" रात की तंग नींद के बाद सवेरे चाय के साथ जब किरण ने टी.वी. पर कहानीकार डॉ. एस.डी. वैष्णव की चर्चा "कोख के अन्दर और कोख के बाहर, यही है बेटियों का हाल" बड़ी देर तक सुना था। चर्चा देखने के बाद, अखबार और चाय मेरे हाथों में थमाते हुए कहा 'इस देश में बेटी होना पाप है क्या?.....और वह कह रही थी, मानव ऐसे हजारों अपकर्म करता है, जो हमारे सम्मुख आते-आते धुँधले पड़ जाते हैं और केवल टी.वी. या अखबार के पन्नो की ऊपरी शोभा बढ़ाते रह जाते हैं। कौन पूछेगा? उसके होने न होने का मोल, कौन करेगा आखिर पहल? क्योंकि हम तो सरकार के भरोसे, सारा दारोमदार उनके ऊपर थोप कर स्वयं निश्चिंत हो जाते हैं। पर क्या फिर कोई दीपक सुनेगा हर बार वह सिसकती हुई आवाज.....। या फिर किसी चाचा का होगा ऐसा उपकार किसी और किरण के लिए। दिन प्रतिदिन ऐसे वाक्ये होते रहेंगे। अगर ऐसा ही रहा तो न रहेगी मानवता और न मानव। फिर वही लेख होगा और होगी ऐसी ही चर्चा पर लेखक, पत्रकार या विचारक बदलते रहेंगे....।

वो अपने वक्तव्य को निरन्तर बढ़ाए जा रही थी और मैं अर्द्ध-स्वप्न में ऐसे प्रश्नों पर चिन्तन कर....फिर एक कहानी लिखने की तैयारी कर रहा था। पर एक आवाज़ बार-बार किसी कोने से आ रही थी, क्यों? किसके लिए.....?

दुनिया एक पहेली देखी

डॉ. सुधेश

दुनिया एक पहेली देखी
पीड़ा एक सहेली देखी ।
क्या वह दर्द किसी का समझे
जिस ने सिर्फ हवेली देखी ।
रुपया एक बडी दौलत है
जिस ने ख़ाली हथेली देखी ।
दुश्मन बने अगर माली ही
खिलती कहाँ चमेली देखी ।
लालच आग लगी जिस बस्ती
जलती नई नवेली देखी ।
वे ही फिरे भटकते दर दर
जिन के नाम हवेली देखी ।
चन्दा सूरज दूरी नापी
दुनिया एक पहेली देखी

जल पूजन

कादम्बरी मेहरा

एक दिन सुबह सुबह सात बजे मेरी बेटी का फोन आया. वह पूछना चाहती थी कि हम घर छोड़ते समय द्वार पर चाँदी के लोटे में जल लेकर 'सगुन' क्यों करते हैं. इस प्रथा में उसे ही चुन्नी सर पर ढँक कर खड़ा किया जाता था. मेरी बेटी दन्त-चिकित्सक है. पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से उसकी आधुनिक सोच व जीवन में कार्य की व्यस्तता को देखते हुए मुझे इस प्रश्न पर बड़ा आश्चर्य हुआ. कारण पूछा तो वह बड़ी मासूमियत से बोली कि उसका नौ वर्ष का पुत्र स्कूल ट्रिप के साथ परदेस जा रहा है और वह उसको घर से भेजते समय वही सगुन करना चाहती है .

मेरा मन भर आया. एक और माँ ! एक और अनजान की आशंका ! एक और विचलित मन ! मुझे भी तो मेरी माँ ने यह सिखाया था. गर्व से एक लम्बी साँस ली. छाती भर ऑक्सीजन या जीवन भर का आश्वासन ? या परम्परा की सनातन, चिरंजीवी निरंतरता ! ममता भरे ह्रदय के डर ने ही तो आखिर धर्म को जन्म दिया.

माँ की सिखाई रीति कुछ इस प्रकार है - जब कोइ घर से परदेस यात्रा पर जाता है तो किसी कन्या या सुहागिन को लाल चुन्नी सर पर ढँक कर द्वार के दाहिनी ओर खड़ा कर दिया जाता है. उसके एक हाथ में जल से भरा पात्र व दूसरे में शक्कर की कटोरी होती है. परदेस जाने वाला कटोरी की शक्कर चुटकी भर जल में, चुटकी भर कन्या के मुँह में व चुटकी भर अपने मुँह में डालता है. तदुपरांत जेब से पैसा निकालकर जलपात्र में डालता है और उसे प्रणाम करके दहलीज लाँघ जाता है. इसके साथ ही एक बहुत पुरानी अरदास (प्रार्थना) बोली जाती है - 'सदा भवानी दाहिनी, गौरीपुत्र गणेश. पाँच देव रक्षा करें, ब्रह्मा, विष्णु, महेश.'

माँ ने बताया था कि यह प्रथा कुएँ की पूजा का सूक्ष्म रूपांतर है. हर क्षेत्र का अपना कुआँ या बावडी होती थी जिनकी पूजा होती थी. जल की पूजा से ही सब शुभ काम शुरू किये जाते थे और समाप्त किये जाते थे. इस विधि का आशय यह था कि जाने वाला सही-सलामत वापस आए और उसी जल को पूजता रहे.

आधुनिक कल संस्थानों के बनने से पूर्व प्राकृतिक जलाशय - कुएँ, बावड़ियाँ, नदियाँ और तालाब आदि ही जन साधारण के लिए पानी के स्त्रोत थे. इनको बहुत सम्मान दिया जाता था. अनेकों रीति-रिवाज़ हमारे शुभ-अशुभ अवसरों से जुड़े हैं जिनमे जल पूजन का विधान है.

कोई भी पूजा हो, उसका आरम्भ जल से होता है. इसके तीन चरण हैं. प्रक्षालन, आचमन एवं संकल्प. प्रक्षालन यानि हाथ पैर धोना, जल से शुद्धि, आचमन यानि जल से मुख एवं आंतरिक अंगों की शुद्धि, संकल्प यानि शुद्ध मन से की गयी प्रतिज्ञा। संकल्प लेते समय दायें हाथ की हथेली में जल लेकर मन में प्रतिज्ञा की जाती है. संकल्प के साथ ही दक्षिणा का विधान है, यह आपके धन की शुद्धि होती है. इस प्रकार तन, मन, धन, तीनों की शुद्धि करने के बाद हम पूजा आरम्भ करते हैं. अधिक दिन नहीं हुए

हैं जब पूजा के लिए जल कुँए से मँगवाया जाता था. अब हम इस रिवाज का पालन नहीं कर रहे. पहले हरेक घर में कुआँ बनवाया जाता था. बड़े रईसों ने अपने पूर्वजों का सत्कार करने के लिए अनेकों कुएँ बनवाये थे. विज्ञान की उन्नति के कारण अब नल के पानी को ही शुद्ध माना जाता है. अनेकों कुँए बड़े शहरों में बढ़ती आबादी एवं निर्माण की भेंट चढ़ गए. पेड़ों के काट दिए जाने से अनेकों कुएँ सूख गए. बीसवीं सदी के आरम्भ में जब मलेरिया की रोक थाम की गयी तो अनेकों कुओं को ढक दिया गया व अनेकों को पाट दिया गया क्योंकि उनमे मच्छर पैदा होते थे.

म्युनिस्पैलिटी के इस फरमान का जोरदार विरोध किया गया. जैन सम्प्रदाय ने तर्क रखा की जिस पानी पर सूर्य और चन्द्र की छाया न पड़ती हो उससे मंदिर में तीर्थंकरों की मूर्तियों को स्नान नहीं कराया जा सकता. हिन्दू धर्मावलम्बियों की भी यही दलील थी. यह सच है कि सूर्य की रौशनी से कीटाणु मर जाते हैं मगर गहरे कूपों में इतनी रोशनी नहीं पहुँच पाती.

इस आज्ञा का सबसे ज्यादा विरोध पारसी समुदाय ने किया. पारसियों का विश्वास है कि कुओं में पीर या सैय्यद या परियों का वास होता है और उनको ढँकने से वह क़ैद हो जायेंगे. अतः रात को विचरण नहीं कर पायेंगे. न ही उन्हें दिन का उजाला मिलेगा न रात की चाँदनी. उनकी पूजा करना असंभव हो जाएगा. पारसियों के साथ-साथ उसी जगह रहनेवाले अन्य समुदायों के लोग भी नाराज़ हुए. पारसी लोग नियमित रूप से कुओं की पूजा करते हैं. वह नारियल फूल माला धूप आदि से पूजा करते हैं और मिठाई आदि भी चढाते हैं. इसका कारण है कि पारसी धर्म में "आर्देवी सूरा अनाहिता" नामक देवी जलाशयों की देवी है. कुओं में चढ़ाई पूजा वहाँ रहने वाली परियाँ या महान आत्मा देवी तक ले जाती हैं. इसके साथ ही यह अंधविश्वास प्रचलित था कि इन आत्माओं को अगर नाराज किया गया तो यह अनिष्ट करेंगी. यह विश्वास जनसाधारण में भी था. अतः कुओं को ढँकने का कोई और तरीका सोचा गया. कुछ ने जाली लगवा ली और कुछ ने लकड़ी के पत्तों में जाली का दरवाज़ा लगवाया. मुम्बई में कुओं से सम्बंधित अनेक दन्त कथाएँ सामने आईं.

एक बनिया था. वह अपने परिवार के साथ तीर्थयात्रा पर जा रहा था. राह में उसे व उसके परिवार को प्यास लगी. एक घने बरगद के पास कुआँ आदि देखकर बनिया रुक गया. उसने बैलगाड़ी पेड़ से बाँधी और जल आदि लेने गया. मौक़ा देखकर कुएँ में रहनेवाले जिन्न, एकदंतोरियो ने उसकी पत्नी को चुरा लिया. बनिए ने उसे बहुत चढ़ावा दिया और अपनी पत्नी को वापिस माँगा. एकदंतोरियो खा पी कर भी मुकर गया. बनिया रोता रोता बोचकिबाई के पास गया. बोचकी बाई ने फैसला बनिए के पक्ष में दिया. पर एकदंतोरियो न माना. तब बोचकी बाई ने उसे बाँस की नलकी में क़ैद कर लिया और बनिए को उसका परिवार वापिस मिल गया. अब एक्दंतोरियो को यह सज़ा मिली कि वह सदा अपनी कहानी सबको सुनाएगा. जो चुपचाप सुन लेगा उसे वह कभी नहीं सताएगा. (यह कथा मुझे अंग्रेजी की कथा Rhyme Of The Ancient Mariner की याद दिलाती है.)

कहा जाता है कि कालबादेवी मुम्बई के निकट एक थिएटर के मालिक ने अपनी इमारत बनवाते समय वहाँ के कुएँ को बंद करवा दिया. सब हिन्दू और पारसियों ने उस जगह को अशुभ मानकर थिएटर का बाईकाट कर दिया. थिएटर नहीं चला. तब उसने वह जगह बेच दी और तबाह हो गया. अगले मालिक ने कुआँ फिर से खुलवा दिया और उसी जगह से लाखों कमाए.

घोघा स्ट्रीट मुम्बई में एक कुआँ था जिसे पारसी पूजते थे. कहते हैं कि यह इच्छादानी कुआँ था. आठ या बारह स्त्रियाँ, सुहागिनें कुँए की जगत के आस पास घेरा बना कर खड़ी हो जाती थीं. पूजन आदि के बाद वह प्रश्न पूछती थीं. यदि जल में बसने वाली परियों या आत्मा का उत्तर हाँ में होता था तो पानी की सतह पर आग की लपटें नज़र आती थीं.

कुओं में गन्दगी फेंकना या शव फेंकना बदकिस्मती को न्यौता देना है. सौ वर्ष पहले प्रसिद्ध नौरोजी वाडिया के घर को उनकी मृत्यु के बाद बेच दिया गया. इस विशाल हवेली में एक कुआँ था जिसमें कहते हैं रात को परियाँ नाचा करती थीं. साथ वाली एक बुढ़िया अक्सर यह स्वर्गिक संगीत सुना करती थी. नए मालिक के आने पर कहते हैं कि यह संगीत बंद हो गया और एक के बाद एक उसके परिवार में कई मौतें हो गईं. कारण यह कि उसने कुँए के पास वाले कमरे को शवगृह बना दिया था. दफ़न करने से पहले मृत शरीर इसमें रखे जाते थे. इससे कुआँ भ्रष्ट हो गया और उसमे निवास करनेवाली आत्मा नाराज़ हो गयी. शव गृह हटा देना पडा. ऐसे ही दमिश्क सीरिया में रिवाज़ है कि यदि कोई शवयात्रा घर के पास से गुजरे तो घर का सारा पानी अशुद्ध हो जाता था और फेंक दिया जाता था.

पानी की बूँदें कहें.....

मनोज कुमार शुक्ल "मनोज"

पानी की बूंदें कहें, मुझको रखो सहेज ।
व्यर्थ न बहने दो मुझे , प्रभु ने दिया दहेज ।।

बादल बरखें नेह के, धरा प्रफुल्लित होय ।
हरित चूनरी ओढ़ के, प्रकृति मुदित मन होय ।।

ताल तलैया बावली, बनवाने का काम ।
पुण्य कार्य करते रहे, पुरखे अपने नाम ।।

निर्मल जल पीते रहे, दुनिया के सब लोग ।
नहीं किसी को तब हुआ, इससे कोई रोग ।।

अविवेकी मानव हुआ, कर बस्ती आबाद ।
नदी सरोवर बावली, किए सभी बरबाद ।।

जल को संचित कीजिये, ताल बांध औ कूप ।
साफ स्वच्छ इनको रखें, नहीं छलेगी धूप ।।

सरवर गंदे हो गये, तो जीवन दुश्वार ।
जल, थल, नभ-चर औ अचर, संकट बढ़ें हजार ।।

जल जीवन मुस्कान है, समझो इसका अर्थ ।
पानी बिन सब सून है, नहीं बहाओ व्यर्थ ।।

छोटे अखबार जिन्दा हैं यही बहुत है

डॉ. विनय कुमार शर्मा

एक विदेशी पत्रकार के शब्दों में समाचार पत्रों का जीवनवृत्त असाधारण रूप से रोमांचकारी होता है। उनका उदय प्रायः वाह्य परिस्थितियों की विषमता में नहीं अपितु व्यक्ति अथवा समूह विशेष के अहम, उद्देश्य या कार्य-कर्तव्य की पूर्ति के प्रयास में होता है, कुछ पत्र धीरे-धीरे प्रकाशहीन होकर अंततः क्षय को प्राप्त हो जाते हैं। अन्य द्वन्द्व की एक पकड़ में काल-कवलित हो उठते हैं। केवल कुछ ही ऐसे पत्र बचते हैं जो डूबते-डूबते भी अपनी असाधारण आभा से राजमार्ग को आलोकित कर सकें। यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो उपर्युक्त कथन हिन्दी पत्रों के उदय और अस्त के विषय में भी अक्षरश: सत्य है।

इतिहास के तथ्य और आंकड़ों से भी इसकी पुष्टि की जा सकती है, लेकिन वैसा करना यहाँ अपेक्षित नहीं। इतिहास स्वयं अपने में अपूर्ण होता है और संभवतः जड़ भी। सच तो यह है कि इतिहास का भी एक इतिहास होता है और वह इतिहास सन्-सम्वत् या घटनाओं की नापजोख का बंदी नहीं होता। परिस्थितियों की जड़ता भी उसे नहीं बाँध सकती। मानव मन की सूक्ष्मात्-सूक्ष्म वृत्तियाँ उसकी आधारशिला हैं तथा जीवन-जगत में व्याप्त चेतन अनुभव उसे कलेवर प्रदान करते हैं। तो, हिन्दी पत्रों के उदय और अस्त की एक झाँकी के दर्शन के लिए आइए, उसी इतिहास के लोक में प्रविष्ट हों।

आत्माभिव्यक्ति और आत्मप्रकाशन मानवमन की दो ऐसी वृत्तियाँ हैं जो उसकी लघुता और महानता दोनों की ही रूपरेखा तैयार करती हैं। बात रह जाती है केवल आत्मा की। महापुरूषों की आत्मा आलोक किरण बनकर युवक के अंधकार में ध्रुवतारा की तरह पथ का प्रदर्शन करती है। स्वार्थरत व्यक्ति या समूह अपने आत्मदर्शन द्वारा एक ओर तो अवहेलना, उपेक्षा और तिरस्कार का पात्र बनता है तथा दूसरी ओर समाज में कलुष और कल्मष का प्रसार करता है।

अधिकांश हिन्दी पत्र-स्वतंत्रता प्राप्ति की संकल्प-भावना, समाज-सुधार अथवा साहित्यश्री की अभिवृद्धि की कामना से प्रारम्भ हुए थे। वह पत्रकारिता का शैशव था। उनके जनकों को अपने आत्मजों के लालन-पालन का अनुभव भी नहीं था। दासता के विषाक्त वातावरण में विदेशी शासकों ने क्षय के कीटाणु छोड़ रखे थे। अधिकांश पत्र अपने जन्म के कुछ ही काल में रोगी हो उठते थे। राजा राममोहन राय ने एक स्थान पर कहा भी है - आप मुझसे पूछ सकते हैं कि समाचार पत्रों का प्रकाशन आखिर मैंने क्यों प्रारम्भ किया? उत्तर स्पष्ट है। मुझे प्रतीत हुआ कि यदि मैंने अपनी आत्मा की व्यग्रता, उत्कर्ष चेतना और लोकहित की अंतः प्रेरणा का समाचारपत्रों के माध्यम द्वारा अपने कोटि-कोटि बंधुओं तक नहीं पहुँचाया तो विवशता की घुटन मुझे सहज ही आत्मसात कर डालेगी। इसी तरह अदालत में पूछे गये एक प्रश्न के उत्तर में लोकमान्य तिलक ने घोषणा की थी 'समाचार पत्र निकालने का मेरा उद्देश्य धन-अर्जन या यशप्राप्ति की लिप्सा नहीं है। मैंने उसके अक्षर-अक्षर में उस क्रांति के बीज बोये हैं जो विदेशी शासन के प्रसाद को धूल-धूसरित कर देंगे। शासन के प्रति विद्रोह ही मेरी पत्रकारिता का प्रथम और अंतिम लक्ष्य है। पंडित प्रतापनारायण मिश्र ने ब्राम्हण के एक संपादकीय में कहा था - सामाजिक कुरीतियाँ राजनीतिक दास्ता को बल देती हैं। सम्पूर्ण समाज से इन कुरीतियों को दूर करने का कार्य तो मेरे सक्षम भाई ही कर पायेंगे। हाँ, एक सीमित वर्ग के जीवन में आमूल परिवर्तन लाना मेरे इस पत्र का उद्देश्य है।

प्रबल मनोवेग और महती आकांक्षाओं में पालित यह पत्र अधिकांशतः अल्पजीवी रहे। विदेशी शासन-निर्मित कानूनों के निर्मम प्रहार, ग्राहकों की शून्यता, प्रकाशन, मुद्रण और प्रसारण की कठिनाई और अपने लक्ष्य के प्रति प्रतिबद्ध पत्रकारों का अभाव-इन सब तथ्यों पर ही अधिकांश पत्रों को आत्मसात करने का दायित्व है। हाँ कुछ पत्रों का सौभाग्य रहा कि उन्हें जनता-जनार्दन का वह सक्षम वरदहस्त मिला जिसने उनको परिस्थितियों की विपरीतता में भी सुरक्षित रखा। इसी तारतम्य में याद आती है वरिष्ठ पत्रकार स्व. अरविन्द मोहन स्वामी की जिन्होंने कहा था कि छोटे और मझोले अखबार तो किसी तरह अपनी जीविका चला रहे हैं। प्रतिस्पर्धा के इस युग में वे टिके हैं यही बहुत बड़ी बात है।

वस्तुतः हिन्दी पत्रों का जीवन संकल्प की दृढ़ता पर ही निर्भर रहा है। व्यक्तिगत प्रचार की आकांक्षा तथा संस्थापक-संपादक के स्थान पर अपना नाम मुद्रित देखने की कामना रखने वाले महानुभाव पत्रकारिता के पोषक नहीं, शोषक होते है। अभी कुछ ही दिनों पहले एक वयोवृद्ध पत्रकार ने एक हिन्दी साप्ताहिक से संबंधित अपने अनुभव सुनाये थे। उनके कथन का सार था - चन्दे में प्राप्त रकम कैसे खर्च हुई उसका उत्तर प्रस्तुत करने के लिए वह पत्र निकाला गया था।

राजनीतिक दबाव से पत्र की आवश्यकता से दुगुना कागज मिलता था। बचे हुए कागज को मालिकान काला बाजार में बेच लेते थे। आये दिन सम्पादकों को बदल दिया जाता। जो स्वेच्छा से नौकरी छोड़ जाते थे, उनकी खैर थी। रुकने की चेष्टा के अर्थ होते थे भारी विपत्तियों को स्वयं आमंत्रित करना। स्पष्ट है कि ऐसे पत्रों को देर-सवेर मरना ही पड़ता है। जो उद्देश्य उनके जनम का होता है वही उनके अवसान का भी। इस तरह के पत्र प्रकाशक पत्रकारिता के पोषक नहीं, उसके घोर शत्रु होते हैं। इसी श्रेणी के कुछ अन्य प्रकाशकों पर दृष्टिपात कीजिए। उन्होंने अपने पत्रों को अपनी तलवार भी बना रखी है और ढाल भी। अनेक राजनीतिबाज नेता नगरपालिका या जिला परिषद या किसी अन्य क्षेत्र की प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप अथवा सरकारी तंत्र की गतिविधियों का छिद्रान्वेषण करने के निमित्त प्रायः जिला मुख्यालयों पर रोमांचकारी नामों से अपने पत्रों का प्रकाशन करते हैं।

पाठक कुतूहलवश इन पत्रों को पढ़ते हैं। उनमें छपी खबरों में रुचि रखते हैं। खबरों की टीका-टिप्पणी करते हैं और फिर उन पर निरंतर चर्चा करते हुए वातावरण को दुर्गन्धपूर्ण और विषाक्त बनाते रहते हैं, ऐसे पत्रों के मरण में ही उनका कल्याण है। असत्य और अनाचार के विरुद्ध संघर्ष को अपना ध्येय बताते हुए वस्तुतः वह अपनी खलसत्ता के पोषण में ही लगे रहते हैं। सम्भव है, इनके जैसे प्रत्यक्ष अनुभवों से प्रभावित होकर पत्रकार-प्रवर बाबूराव विष्णु पराड़कर ने कहा था- लोकमंगल के प्रति निष्ठा पत्रों की जीवनशक्ति होती है। उसके अभाव में कोई पत्र साँसें जरूर ले सकता है; जीवित नहीं रह सकता। संसार में दीर्घजीवी पत्रों का यही रहस्य है। शासनसत्ता जनसामान्य के हित के लिए होती है और समाचार पत्र भी प्रायः वही काम करते हैं। फिर दोनों के बीच संघर्ष कैसा, और प्रतिबंधक कानून किसलिए? उत्तर स्पष्ट है। सरकार स्थायी व्यवस्था है और जनजन का हितसाधन और संरक्षण उसका उद्देश्य है। एक व्यक्ति के प्रति अन्याय भी उसे मान्य नहीं होना चाहिए। होना तो पत्रों का भी यही लक्ष्य चाहिए, लेकिन दुर्भाग्यवश अधिकांश पत्र मर्यादा की पावनता को निभाने में पूरी तरह समर्थ नहीं हो पाते।

व्यवसाय या दल विशेष के पोषण के फेर में पड़कर ऐसे पत्र सर्वहित की भावना से ही वंचित नहीं होते अपितु सर्वहित साधन में बाधक भी बन जाते हैं। यह पत्र प्रायः हिंसा, विद्रोह, उत्तेजना तथा

अशांति का समर्थन भी कर बैठते हैं। परतंत्र देश में इन पत्रों की भले ही कुछ उपयोगिता भी हो, लेकिन स्वतंत्र देश में जनतंत्रीय व्यवस्था के अन्तर्गत वह पत्र अनागरिक ही माने जायेंगे।

झूठे तथा गढ़े विज्ञापन, व्यक्तियों की प्रतिष्ठा पर अनर्गल आरोप, हिंसक साधनों से सरकार को उलट देने की भावना का पोषण और इन सबके, साथ विदेशी शक्तियों से अराष्ट्रीय साठगांठ, वह सब वह तथ्य हैं जो स्वतंत्र देश की सरकार को उन पर प्रतिबंध लगाने के लिये विवश करते हैं।

पत्रों की स्वतंत्रता और उसकी सीमा स्वतंत्र देशों में हमेशा विवाद की विषय रही है। एक ओर जहाँ नागरिकों के मूलभूत अधिकारों के अंतर्गत स्वतंत्रता का प्रतिपादन किया जाता है वहीं दूसरी ओर हमें इस बात का स्मरण भी रखना चाहिए कि कर्तव्यपालन के प्रति निष्ठा को सुदृढ़ बनाये बिना अधिकारों की माँग हमेशा आत्मघाती होती है।

मुखापेक्षी, पराश्रित और परजीवी इन तीन वृत्तियों की ओर संकेत किये बिना पत्रों के उदय-अस्त पत्रकारिता की प्रबल शत्रु हैं वह मित्र बनकर रहती हैं और फिर अवसर पाते ही गला दबाकर प्राणों का हरण कर डालती हैं धनकुबेर अक्सर विभिन्न लोकप्रिय पत्रों पर अपना स्वामित्व या आधिपत्य प्राप्त करने के लिए प्रयासरत रहते हैं। लम्बे-चौड़े विज्ञापनों के माध्यम से अथवा समय-असमय विभिन्न प्रकार की वित्तीय सहायता द्वारा यह पूँजीपति हमेशा ही अनेक पत्रों पर अपना प्रभाव स्थापित करने में सफल रहे हैं।

इश्क़ और जम्हूरियत

दिनेश कुमार डीजे

बेबाक जियो जिंदगी, पर प्यार हो संभल के,
हसीनों और नेताओं पर ऐतबार हो संभल के।
चेहरे से दिल की परख भूल भी हो सकती है,
दिमाग वालों से दिली व्यवहार हो संभल के।
नेता और महबूब कभी भी धोखा दे सकते हैं,
समझदार लोगों से सरोकार हो संभल के।
महबूब और नेता चुनना जीवन बदल सकता है,
सही उम्मीदवार सही सरकार हो संभल के।
मांझी पे ज्यादा भरोसा नाव डुबो सकता है,
तैरने का हुनर हाथों की पतवार हो संभल के।
शराब शबाब पैसे से नियत डोल सकती है,
सावधान! मुल्क के पहरेदार हो संभल के।
इश्क़ और जम्हूरियत हो जात–धर्म से ऊपर,
सच्ची दोस्ती या वोटों का विचार हो संभल के।
कद्र करो नारी की,पर इश्क करोगे किससे?
वतन की मिट्टी के कर्जदार हो संभल के।

इंसानियत से दूर होती हमारी सदी

(कक्षा ८, सेंट जॉन्स स्कूल-डीएलडब्ल्यू, वाराणसी का विद्यार्थी)

वैशम्पायन चतुर्वेदी

सन् १९४७ में यह मेरा भारत स्वतंत्र हुआ था। भारी मशक्कत के बाद मेरा अपना राष्ट्र आज़ाद हुआ था। पर, अपने ही दादा-परदादा के भयानक जानलेवा संघर्षों और अपमानों को उनके वारिस हम पौत्र-प्रपौत्र भूल गए हैं।

मैं सोचता हूँ कि जब आज हम इंसानों को कोई भी कष्ट होने पर हमारे लिए पुलिस है। किन्तु जीव-जंतुओं का कौन है अपना? जीव-जंतुओं की तड़पती पीड़ाओं को कौन सुनेगा? क्या आज़ाद देश में जानवरों को सुकून से आज़ाद और सुरक्षित रहने का हक़ नहीं है? क्या इन्हें धरती पर रहने का हक़ नहीं है? क्या यह धरती केवल इंसानों की ही जायदाद है? हम इंसान आज जानवरों के ख़त्म होनें के सबसे बड़े कारण हैं; क्योंकि हम इंसानों को गोह की खाल के जूते चाहिए, मगरमच्छ की खाल के बटुवे चाहिए और ऐसी कई चीज़ें हैं, जिनको बनाने में हम जानवरों की खाल का प्रयोग करते हैं। क्या जानवरों का अपना प्यारा परिवार नहीं होता है? क्या जीव-जंतुओं को अपनों से बिछोह का दर्द नहीं होता है? हमें इन जीवों को कैद रखनें मैं कौन सी प्रसन्नता होती है? चिड़ियों को, और ऐसे ही कई जीवों को पिंजड़े में रख कर धन कमानें में कौन सी ख़ुशी मिलती है? आज हम शेरों को, हाथियों को और सभी अन्य प्राणियों को सर्कस में नचाते हैं। हम इंसान कुछ पैसे कमाने के लिए जानवरों को मार देते हैं। आज इंसान कितना गिर चुका है कि यकीन ही नहीं होता कि भगवान श्री कृष्ण जी, भगवान श्री राम चन्द्र जी और ऐसे ही कई महापुरुषों की जन्मस्थल है यह पृथ्वी। आज हम बड़ी से बड़ी इमारतें बनाने के लिए पेड़ों को काट रहे हैं, जानवरों को बेघर कर रहें हैं और उनसे उनका जंगल तक छीन ले रहे हैं। पेड़ों ने सदियों से हमें धूप से बचाया है, हमें फल दिया है और कई चीज़ें दीं हैं, लेकिन बदले में हमनें आज तक उन्हें क्या दिया है? केवल और केवल उन्हें बेरहमी से काटना शुरू कर दिया है, जबकि कोई सहारा जिसका नहीं, उसका सब कुछ है यह पेड़। ये सबको ऑक्सीजन देते हैं, बदले में क्या लेते हैं? हम इंसानों के ही कारण आज ग्लोबल वार्मिंग हो रही है। हम इन्सान कितनें खुदगर्ज़ हैं कि जो गाय हमें दूध देती है हम उसी को मारते हैं! हम इंसान प्रकृति की गोद में रह कर प्रकृति को ही नष्ट कर रहे हैं। आज से ठीक ५० साल बाद आने वाली पीढ़ी हमसे किताबों में पढ़कर पूछेगी कि यह शेर कैसा दीखता था? यह गाय कैसी होती है? डाल किसको कहते हैं? पेड़ किस आदमी का नाम है? ठीक वैसे ही, जैसे आज हम अपने बड़ों से पूछते हैं कि यह डायनासौर कैसा दीखता था? आज हम इंसान अपनी इंसानियत भूलते जा रहे हैं। इन सबकी भावनाओं को समझें। वैभव की सड़कें पेड़ों को खो कर क्या कहती हैं और आनेवाले भूकम्प क्यों दहाड़ते हैं। विकास के होश में जोश खो चुके हैं हम। क्या हम-आप इस धरती के लिए परग्रही एलियंस हैं? इसी धरती की संतान यदि हम खुद को समझते हैं तो खुद को जगाएँ। जीवों पर दया करें, पेड़ों को न काटें, नदियों को प्रदूषित न करें, क्योंकि इन्हीं वजहों से प्रदूषित हो रही है हमारी पूरी पृथ्वी, जिसे हम माता मानते हैं। आज कैसे होते जा रहे हैं हम? आसमान के पथिकों को उतरने के लिए यह धरती ही चाहिए, जिसे एक ए. सी. रूम में नहीं बदला जा सकता। क्या गर्मी की ऋतु निरर्थक है? फिर वर्षा ऋतु हम कैसे पाएँगे? कौन किससे पूछे? खुद से पूछने का साहसी हृदय और एक मन आज विकास के पीछे हम कहाँ खो दिये हैं? अब इस प्यारी धरती को छोड़कर हम चन्द्रमा और मंगल पर ही जायेंगे क्या? चन्द्रमा और मंगल भी हमें नहीं पूछेंगे तो? धरती जैसी इतनी सुविधाएँ कहीं **नहीं मिलेंगी हमें। हमारा चन्द्रलोक और मंगल तो यह हमारी धरती ही है हमारे लिए, जिसे बर्बाद करनें में लगे हैं हम।**

मेरे आँगन की कच्ची मिट्टी

स्नेह ठाकुर

अपने छोटे-से मकान के पिछवाड़े
लगा रखी है मैंने फुलवाड़ी
क्योंकि मुझे शौक़ है फूलों का
तुमने अपने आलीशान स्वर्ण महल के पीछे
बना लिया है पक्का चबूतरा
और एक कोने में
सोने-चाँदी से बने कटघरे में
उगाए हैं बारूद के पौधे
जो अपनी विषाक्त साँसें उगल-उगल
झुलसा रहा है वातावरण
मुरझा रहे हैं हरे-भरे खेत
उड़ रहा है जीव-जंतुओं का चैन
धरती में पड़ गईं दरार
खलबला उठा समुंदर का पानी
तुम मुस्कुरा रहे हो व्यंग्य से
देख मेरी छोटी-सी फुलवाड़ी

हाँ,
शायद मेरा प्रयत्न नगण्य है
या शायद नहीं भी
शायद मेरा यह छोटा-सा प्रयास
क्रांति की चिंगारी बन
जगा दे विस्तृत जाग्रति
बारूद की जानलेवा ज़हरीली दुर्गंध की अपेक्षा
मज़बूती से धरती पकड़े
मेरे फूल-पौधों की जड़ें
लहरा दें हर दिशा में सुगंध ही सुगंध;
इसी आशा से छोड़ रखी है मैंने
आँगन में अपने अस्तित्व की कच्ची मिट्टी.

बच्चा चोर

सपना मांगलिक

"पकड़ो उसे, वो औरत बच्चा चोर है।" "मेरा बच्चा मुझे लौटा दो" तेज आवाज में लोग चीखते हुए समूह में भाग रहे थे तो कोई गाली गलौच कर रहा था, कोई उस महिला को बिचपुरी के प्रसिद्ध पागलखाने में डलवाने का सुझाव दे रहा था ।सड़क पर भागती एक औरत और उसके पीछे भागता एक समूह, और समूह के साथ पछाड़ खा कर गिरती – पड़ती, बिलखती एक औरत जिसका बच्चा लेकर शायद वो औरत भाग रही थी, प्रथम दृष्टि में माजरा कुछ समझ नहीं आया तो गाडी से उतर आस–पास के लोगों से पूछताछ करने लगी। लोगों ने जो बताया उसे सुनकर आँखों के सागर को भावनाओं के बादल ने लबालब कर दिया।

उस व्यक्ति ने तो हँसते हुए बताया "वो औरत बच्चा चोर है बहनजी, रोजाना इसका यही नाटक है, कभी किसी का बच्चा उठा कर भाग जाती है तो कभी किसी का, पता नहीं इसका घरबाला इसको पागल खाने क्यों नहीं डाल रहा है? खामख्वाह अपनी इज्जत को मटियामेट कर रहा है और अपना काम धंधा छोड़ इस पगली को यहाँ वहाँ से पकड़-पकड़ कर लाता फिरता है।

इतनी संबेदनशील बात को उस आदमी को हँसते हुए बताते देख मैं हैरत में पड़ गयी कि आखिर यह युग मशीनी है या आदमी! आखिर जब तक कुछ और लोगों से असल बात पता करती तब तक वह पछाड़ खाती महिला अपने जिगर के टुकड़े को वापस पा आँखों से निर्झर झरना बहाते हुए बच्चे को बेतहाशा चूमती जा रही थी। अपनी छोटी-छोटी भिंची मुठ्ठियाँ और नन्हे पैर ताबड़तोड़ चलाते हुए जैसे कि कोई चाबी से चलने वाला खिलौना हो, माँ की गोद में मासूम नाजुक-सा वह 2-3 महीने का बच्चा चुम्बनों के ताबड़तोड़ प्रहार से या फिर छीना झपटी से या फिर उसका अपनी माँ पर क्रोध, वजह कुछ भी हो सकती थी, चीख- चीखकर रुदन कर रहा था। उस बच्चा चोर महिला को उस समूह ने घेर रखा था। कुछ ने उसके दो चार जमा दिए थे और कुछ तमाशबीन बन उसकी बडबडाहट सुन रहे थे "मेरा बच्चा है वो," "शिबू तू मुझसे नाराज है ना बेटा, अब कभी तुझे नहीं मारूँगी", "अपनी माँ से नाराज मत हो बेटा", शिबू ...शिबू, "वो मेरा बेटा है मैं सच कह रही हूँ वो मेरा बेटा है" वो हर एक के पास जा-जाकर यही शब्द दोहरा रही थी। इतने में एक खाते- पीते घर का सा शरीफ इंसान वहाँ आया और लोगों से हाथ जोड़ते हुए माफ़ी माँगी और उसे "शिबू स्कूल गया है शारदा, भूल गयी क्या? सुबह तुमने ही तो उसे स्कूल भेजा था।"

शारदा नाम की वह महिला बड़े भोलेपन से सर पर हाथ रखती हुई "अरे हाँ! मैंने ही तो सुबह शिबू को तैयार करके स्कूल भेजा था....हाँ हाँ चलो जल्दी वो स्कूल से आता ही होगा... तुम जानते हो न उसे पूड़ी कितनी पसंद है सादा रोटी तो खाना ही नहीं चाहता... हाँ! मैं पूड़ी बना देती हूँ चलो।"

पति पीछे मुड़कर लोगों से एक बार और माफ़ी माँगता है लेकिन इस बार उसकी डबडबाई आँखों से उसके दर्द की दो बूँद ढलक पड़ीं जिन्हें तत्परता से उसने कमीज की बाईं बाँह से पोंछ लिया और अपनी पत्नी को कुछ बोलते उसके कंधे को सहलाते कोई आश्वासन देते धीमे-धीमे घर की ओर चल पड़ा। पीछे रह गया समूह आपस में उसी बच्चा चोर के बारे में चर्चाएँ करने में मगन था । मेरे सीने में कैद माँ के दिल ने उस बच्चा चोर माँ से जाने क्या रिश्ता कायम कर लिया था कि मैं हर हाल में उसके पास जा उसका दुःख बाँटना चाहती थी, उसे दिलासा देना चाहती थी, मगर उस औरत जिसका नाम शारदा था उसकी स्तिथि ऐसी नहीं लग रही थी कि मुझसे वह अपना दर्द साझा कर सके। फिर कैसे

पता लगाऊँ? क्या हुआ शिबु को? कहाँ चला गया शिबू? कहीं उस माँ ने ही तो कुछ .... नहीं नहीं। मेरा दिल काँप उठा। खैर उस नाजुक वक्त को सही न समझ मैं बाज़ार से अपना काम ख़त्म कर वापस घर लौट गयी मगर घर पर भी पूरा दिन मैं उस शिबू की माँ के विषय में सोचती रही, आखिर क्या हुआ होगा शिबू के साथ? उसकी माँ की यह हालत ...उफ्फ, क्या गुजर रही होगी उस आदमी पर जिसका बच्चा शिबू ....और पत्नी उसके गम में मानसिक संतुलन खो बच्चा चोर बन गयी, परिवार की इज्जत और रोजाना का मखौल। कैसे जी रहा होगा वो आदमी? उस दिन मुझे मेरा राक्षसी शैतानियाँ करने वाला बेटा दुनिया का सबसे भोला बच्चा लगा और उसकी तमाम शैतानियों के वावजूद मैं उसे प्रेम से बार-बार निहार और पुचकार रही थी। मुझे अपने बेटे में वो शिबू नजर आ रहा था जिसे मैंने खुद कभी नहीं देखा और मेरा बेटा अपनी माँ में आज अचानक हुए इस परिवर्तन का जी भर के फायदा मेरी लायब्रेरी में धमाचौकड़ी करके उठा रहा था। जहाँ अब से पूर्व उसके कदम रखते ही मैं उस पर बरस पड़ती थी। उस दिन रसोई में काम करते हुए भी बस वही शिबू और उसकी माँ मेरे ज़हन में आ जा रहे थे। उस दिन सब्जियों में मैंने कितनी मात्रा में कौनसा मसाला डाला इसका अहसास सीधे खाने की मेज पर हुआ जब पतिदेव ने गुस्से में अपने और पुत्र के लिए पिज़्ज़ा आर्डर किया। अब मुझे शिबू और उसकी माँ पर गुस्सा भी आने लगा क्यूँ बेवजह मेरे ख्यालों में आ रहे थे, क्यूँ मेरी सोच से चिपक गए ये माँ बेटे? मैंने रात को ही निर्णय ले लिया कि कल शिबू के पिता से किसी न किसी बहाने मिल शिबू और उसकी माँ के बारे में पता लगाऊँगी।

सुबह ग्यारह बजे तक घर के काम खत्म कर मैं उसी मार्केट में पहुँच गयी मगर आज वहाँ कल की तरह का कोई समूह या हल्ला गुल्ला नहीं था। मैं उसी दिशा में जा रही थी जहाँ से कल वह आदमी आया था। कुछ आस-पास की दुकानों से घटना का जिक्र करते हुए पूछताछ की तो पता चला कि वह सामने जो गुलाबी रंग की कोठी दिख रही है वही उस बच्चा चोर का घर है। घर देखकर उस औरत के अच्छे खासे खानदानी परिवार से होने का अंदाजा लग चुका था। मगर यूँ घर में जाना ठीक नहीं था आखिर मेरी वजह से या शिबू के जिक्र से उस औरत का मानसिक संतुलन पुन: बिगड़ने का डर भी था। फिर क्या करूँ, कैसे उसके पति से मिलूँ? तभी नजर घर पर लगे बोर्ड पर पड़ी रितेश सक्सेना, हनुमान प्लाई बोर्ड धूलिया गंज, पढ़ते ही आँखे चमक उठीं, धूलिया गंज यहाँ से ज्यादा दूर नहीं था तभी शायद उसका पति उस दिन घटना के वक्त शीघ्र ही पहुँच गया था। अब मैंने अपनी गाडी स्टार्ट की और धूलियागंज की तरफ बढ़ा दी। धूलियागंज में प्लाई बोर्ड की कई सारी दुकाने थीं इसलिए हनुमान प्लाई बोर्ड को ढूँढने में ज्यादा मशक्कत नहीं हुई। मैंने गाडी में से बाल पत्रिकाओं के कुछ अंक निकाले और दूकान की तरफ चल पड़ी, वह शायद शिबू के पिता हैं? हाँ यही तो हैं जो कल उस औरत को लेने आये थे। मेरे कदम अब तीव्रता से दूकान की तरफ चल पड़े और ठीक दूकान पर ठिठक मैंने उस आदमी को संबोधित करते हुए कहा "सर मैं बाल पत्रिका एजुकेशन की मार्केटिंग मैनेजर हूँ, यह पत्रिका बच्चों के बहुत काम की है और देश के ज्यादातर मिशनरी और सीबीएसई स्कूलों की लाइब्रेरी में हमारी पत्रिका मँगाई जाती हैं। हमारी पत्रिका के दो एडिशन निकलते हैं. प्री प्राइमरी और प्राइमरी के लिए इसमें बड़े ही रोचक तरीके से बच्चों को मैथ और साइंस की जानकारी दी जाती है।"

उस आदमी ने मुझसे संक्षिप्त सा सवाल पूछा "आप मुझसे क्या चाहती हैं?"

मैं एक पल के लिए अपना आत्मविश्वास खो बैठी फिर सँभलते हुए बोली "हम इस पत्रिका के साथ कई आकर्षक ऑफर दे रहे हैं आप इसे अपने बच्चे के लिए सबस्क्राइब कर सकते हैं।"

"हमारे यहाँ बच्चा नहीं है।" एक दर्द में डूबी भीगी-सी आवाज में उसने जवाब दिया। उसकी दुकान का कर्मचारी जो काम करते-करते शायद मेरी और उसकी बातें सुन रहा था नजदीक आ कर बोला "इनके बेटे का दो महीने पहले निधन हो चुका है?" जिसका डर था वही सुनने को मिला यानी

शिबू खोया नहीं .....हे भगवान्। फिर मैंने उस लाचार और दुखी पिता को ढ़ाँढस बँधाते शब्दों में कहा "माफ़ कीजियेगा सर, मुझे वाकई नहीं पता था।

पिता –"आपका कसूर नहीं है, किस्मत मेरी ही ख़राब है।" कहते हुए उसकी आँखों के कोरों से कुछ बूँदें गिरने को लालायित हुईं जिन्हें उसने झट से अपने सफ़ेद रुमाल से पोंछ डाला। कहते हैं कि पुरुष का दिल बहुत मजबूत होता है, मर्द रोते नहीं हैं मगर मर्द जब पिता बनता है तो उसका कठोर दिल कैसे पत्थर से मोम में तब्दील हो जाता है। यह तब्दीली मैंने अपने पति में तो बेटे के जन्म के बाद महसूस किया ही अब इस औलाद खो चुके पिता में भी देख रही थी।

"कैसे हुआ यह सब?" न जाने कब मेरे होंठों से यह प्रश्न निकल गया। इस आत्मीयता से पूछे प्रश्न का असर था या उसके सीने का, दुःख की अपेक्षा छोटा होना या किस्मत की कारगुजारी वजह जो भी थी, अब उसका रुमाल भी आँखों से बहता दरिया रोकने में असमर्थ हो रहा था। थोड़ी देर रो लेने के बाद उसने बताना शुरू किया "विवाह के सात वर्ष तक अनेकों इलाजों के बाद भी जब कोई औलाद नहीं हुई तो हम दोनों पति पत्नी मायूस हो गए थे। लगने लगा था कि वह सुख जो लोगों को सहज मिल जाता है शायद हमें उसके लिए अब ताउम्र तरसना पड़ेगा। मगर किस्मत को शायद हम पर तरस आ गया और ममता की सूनी गोद शिबू जैसे सुन्दर गोल मटोल बच्चे के रूप में भर गयी। पैदा होते ही उसे ब्लड इन्फेक्शन और पीलिया की वजह से एन आई से यू में कई दिनों तक रखना पड़ा। हम घबरा गए कि कहीं इतनी मुश्किल से मिली यह ख़ुशी हमसे दूर न हो जाए मगर यह तूफ़ान भी उमड़-घुमड़ के शांत हो गया और हमें लगने लगा कि जितना सहना था सह लिया अब सुख के दिन आ गए। नवजात शिबू में एक अजीब-सी बैचैनी हमेशा रहती थी। वह रोता और चिडचिडाता बहुत था मगर उसका शारीरिक विकास सही हो रहा था इसलिए हमें कोई दिक्कत भी नहीं थी। आठ महीने का शिबू खड़ा होकर चलने की कोशिश करने लगा तो हमें लगने लगा कि शिबू बाकी बच्चों से तेज है। मगर जैसे जैसे वह बड़ा हो रहा था उसे सँभलना मुश्किल होता जा रहा था। वह एक जगह कभी टिक कर नहीं बैठता। खिलौने से ना खेल बाकी सामानों से छेड़खानी करता। ममता उसे सँभालते-सँभालते परेशान हो उठती थी। बेचारी खाना तक नहीं खा पाती क्योंकि इतनी देर में शिबू कभी चोट लगा बैठता या घर का कोई सामान तोड़ देता। उसे खाना खिलाना, नहलाना या नित्य क्रिया करवाना भी एक चेलेंज के जैसे ही था क्योंकि वह एक जगह टिक ही नहीं सकता था अक्सर मेरे और ममता में भी उसकी परवरिश की वजह से झगडे हो जाते थे क्योंकि थकी हुई ममता चाहती थी कि मैं भी उसे सम्भालूँ मगर मुझसे वो सँभलता ही नहीं था तो मैं चिडचिडा उठता और मासूम शिबू पर चीखने लगता या कभी हाथ उठा देता। ममता को यह भी मंजूर नहीं था कि उसके आँखों के तारे को कोई डाँटे। वह मुझसे नाराज हो जाया करती थी। शिबू चाहे कितना भी शरारती और जिद्दी हो रहा था मगर उसके चेहरे में और मुस्कान में वो मासूमियत थी जो सबका दिल जीत लेती थी। शिबू ढाई साल का था जब उसे प्ले स्कूल में डाला। स्कूल में उसके हमउम्र बच्चों को देख हमें पहली बार अहसास हुआ कि शिबू तेज नहीं बाकी बच्चों से बहुत पीछे है। सारे बच्चे अपनी बात कहने और नाम पुकारने पर एकाग्र होने में समर्थ थे मगर शिबू अपने नाम पर कोई रियेक्ट ही नहीं करता था और टीचर हो या पिता या क्लास के बच्चे सबको ममा कहकर बुलाता था। रोज ही स्कूल से उसके चीजें छूने या एक जगह न बैठने जैसी शिकायतें मिलती मगर साथ में मन होने पर सब कुछ टीचर को इशारे में बताना और अपनी अस्पष्ट आवाज में पढ़ाई से सम्बन्धित सभी जवाब देकर वो टीचर की नजर में जीनियस साबित हो गया। शिबू टीबी देखने का शौक़ीन था इसलिए उसका सामान्य ज्ञान बाकी बच्चों से अच्छा था मगर वाक्य विन्यास का निर्माण न करने और दूसरों की बात एकाग्र हो न सुनने की वजह से और जहाँ कहीं भी उसे ले जाते उसके द्वारा दूसरों का सामान छूने पर हमें शर्मिंदा होना पड़ता । लोग भी हमें सलाह देने लगे कि शिबू को किसी मानसिक रोग विशेषज्ञ

को दिखला देना चाहिए, लोग हमारे नटखट बेटे को पागल कहने से भी नहीं चूकते जबकि वो बस बोलने में कमजोर था ।कभी-कभी शिबू सही कार्य भी कर रहा होता तो हम उसे गलत समझ डाँट देते और वह भावुक हो घंटो रोता रहता। शिबू पांच साल का हो चुका था और उसकी हरकतों में कोई सुधार नहीं हो रहा था पार्टी फंक्शन से लौटने पर ममता और मैं भी शिबू की पिटाई कर देते क्योंकि अब हमें उसके भविष्य की चिंता होने लगी थी प्यार दुलार मेहनत कुछ भी शिबू में सुधार नहीं कर पा रहा था।

मैं चुपचाप उस पिता की कहानी सुन रही थी और अपने आँसुओं को पलकों में छिपे रहने का क्रूर आदेश भी दे रही थी। उस पिता ने आगे बोलना शुरू किया "हमने हारकर कई मनोवैज्ञानिकों को दिखाया। सबने एक ही बात कही "आपका बच्चा अटेंशन डेफिशीएंशी हाइपर एक्टिव डिसऑर्डर से ग्रसित है।" इसका कोई तो इलाज होगा? हम व्याकुल होकर पूछते मगर डॉक्टर "कोई इलाज नहीं दवाइयों से कंट्रोल हो सकता है मगर वह दुष्परिणाम देती हैं यह या तो वक्त के साथ कम होगा या बढ़ जाएगा कुछ कहा नहीं जा सकता, इसे आपके प्रेम, भरोसे और मेहनत की दवाइयों से ज्यादा जरूरत है।" शिबू हमारा नन्हा-सा सुन्दर गोल-मटोल शिबू यह सब जान बूझकर नहीं करता बल्कि उससे उसकी बीमारी यह सब करा रही है। यह सोचते ही हमें वो थप्पड़ और चीख पुकार और फटकार याद आई जो हम उस मासूम पर गुस्से में बरसाते थे। घर आकर ममता खूब रोई और शिबू अपने नन्हे-नन्हे हाथों से उसका चेहरा पोंछ तुतलाती अस्पष्ट आवाज में बोला "मम्मा क्यूँ लोया, चोट लगी?" ममता और मैंने उसे सीने से कसकर लगा लिया और प्रण किया दुनिया चाहे इसे कितना भी धिक्कारे मगर हम अपने पुत्र का साथ हमेशा देंगे। चाहे कितना भी हम सोचते कि उसे कभी नहीं डाँटेंगे, उसपर कभी हाथ नहीं उठाएंगे मगर वह कोई न कोई हरकत ऐसी कर देता कि हाथ उठ ही जाता, साथ में लोगों के प्रश्न "क्या शिबू के दिमाग में कोई खराबी है?" अपने बेटे के बारे में ऐसे सवाल कितने कष्टप्रद होते हैं, इन्हें सुनने वाले माता पिता ही समझ सकते हैं। उस दिन ..... बोलने के बाद वह कुछ देर रुका, शायद अपने आँसू पीने और भर्रायी हुई आवाज जो सीने में उमड़ता दर्द का सैलाब कंठ में ही भींच लेने को प्रयासरत था, से जूझने के लिए।

मैंने बात बीच में ही काटते हुए पूछा "क्या हुआ उस दिन?" शिबू के पिता ने अपनी जेब से पर्स निकला और उस बेजान तस्वीर को काँपते हाथों से छूकर शिबू को स्पर्श करने का प्रयास करते हुए बताना शुरू किया "उस दिन शनिवार था शिबू के स्कूल की छुट्टी। जिस दिन छुट्टी होती थी वह अपनी माँ की नाक में दम कर लेता था। घर में शिबू का शायद मन नहीं लग रहा था वो अपनी माँ के साथ बाहर जाना चाह रहा था। उसने ममता से हँसते हुए कहा "मम्मा शिबू जाए?" ममता जो उसके ऊधम से झुँझलाई हुई थी बोल पड़ी "जहाँ जाना है जाओ, मेरा पीछा छोडो।" शिबू ने फिर कहा "मम्मा मैं जा लाहा हूँ।" ममता उस वक्त शिबू की पसंदीदा पूड़ी बना रही थी क्योंकि सुबह से उसने कुछ नहीं खाया था वैसे भी शिबू के पीछे घूम-घूम कर एक-एक निवाला ममता खिलाती थी वह तो एक जगह टिक कर बैठ ही नहीं सकता था न। बार-बार शिबू एक ही बात बोल रहा था तो ममता ने सोचा वह उसके साथ कोई खेल कर रहा है उसने फिर बोल दिया "हाँ हाँ जाओ गंदे बच्चे अब मम्मा तुम्हें कभी वापस नहीं लाएगी।" रसोई का काम ख़त्म करने के बाद उसके खाने की प्लेट लगा ममता बाहर निकली तो घर का दरवाजा खुला हुआ था। ममता घबराकर बाहर की ओर भागी चौराहे पर भीड़ जमा थी उसने भीड़ में घुसकर देखा तो .....मेरे छोटे से शिबू को किसी वाहन ने बुरी तरह कुचल दिया था। कहते कहते शिबू के पिता फफक कफफक कर रो पड़े।

मेरी ममता भी आँखों के बाँध तोड़कर बह निकली। शिबू के पिता को सांत्वना दे मैंने गाडी घर की तरफ मोड़ी। मेरे दिमाग के ईर्द-गिर्द शिबू के पिता के कहे शब्द मंडराने लगे "शिबू को बोलने में कठिनाई होती थी....वह नाम पुकारने पर प्रतिउत्तर....सवालों के जवाब सही नहीं दे सकता था..."घर

पहुँची तो बेटा फिश वाले सॉफ्ट टॉय से खेलने में व्यस्त था। मैंने उसे अपनी गोदी में उठा सीने से लगाया और पूछा “आपका नाम क्या है?” दो तीन बार पूछने के बाद उसने कहा “फिश।" मेरा कलेजा बैठ गया मैंने उससे फिर पूछा “वेदांत आपको मम्मा अच्छी लगती है या पापा?” उसने अपने नन्हे हाथ मेरे गले में डालते हुए जवाब दिया “फिश पापा, फिश मम्मा फिश वेदांत।" मैंने उस नन्ही सी जान को कसकर अपने सीने से भींच लिया और बुदबुदाने लगी “मैं तुम्हे शिबू नहीं बनने दूँगी बेटा, कभी नहीं”।

सीता को सोने का मृग चाहिए

अनिल जोशी

सोने का मृग
अभी-अभी
उछलता-कूदता किलकारियाँ मारता गया है सोने का मृग
बस गया है वो सीता की आँखों में
सीता स्नेह से राम के कंधे पर हाथ रखती हैं
कहती हैं -
अहा कैसा सुन्दर है यह
कभी देखा नहीं ऐसा मृग
कितनी सुन्दर लगूँगी
मैं इसकी मृगछाल पहनकर

राम जानते हैं सोने के मृग नहीं होते
कहते भी हैं सीता से
पर हठ पर हैं सीता
उन्हें सोने का मृग चाहिए

राम सोचते हैं-
दे ही क्या पाया हूँ मिथिला कुमारी को
आँसू, पीड़ा, आत्मियों से विछोह और बनवास
और धनुष उठा कर चल पड़ते हैं
सीता को सोने का मृग चाहिए

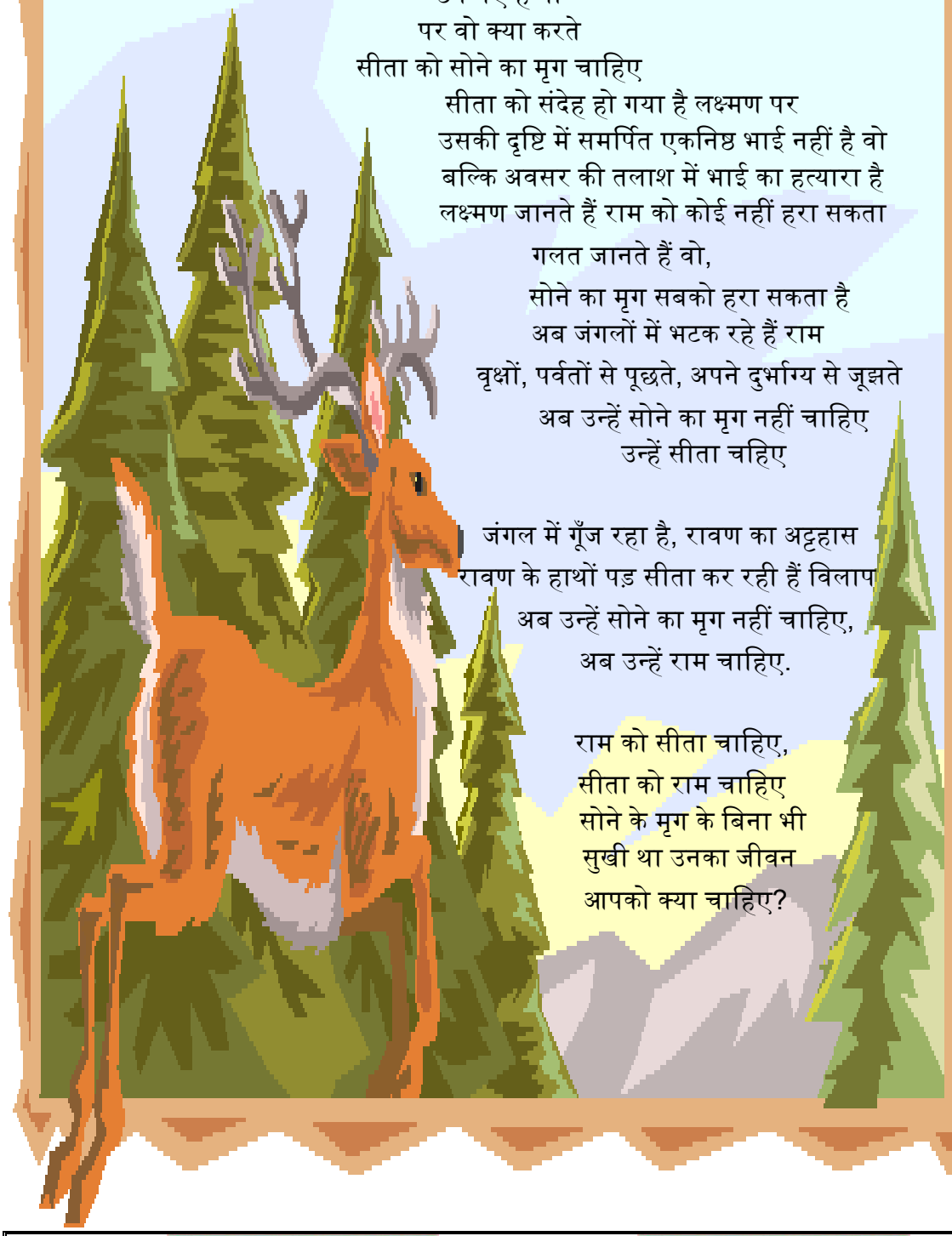

'लक्ष्मण-लक्ष्मण' की आवाजें दे ढेर हो गया है मायावी
सामने पड़ा है विशाल दैत्याकार लहुलुहान शरीर
अपनी अंतिम परिणति में कितना वीभत्स है

सोने का मृग
स्तब्ध खड़े हैं राम
ठगे गए हैं वो
पर वो क्या करते
सीता को सोने का मृग चाहिए

सीता को संदेह हो गया है लक्ष्मण पर
उसकी दृष्टि में समर्पित एकनिष्ठ भाई नहीं है वो
बल्कि अवसर की तलाश में भाई का हत्यारा है
लक्ष्मण जानते हैं राम को कोई नहीं हरा सकता

गलत जानते हैं वो,
सोने का मृग सबको हरा सकता है
अब जंगलों में भटक रहे हैं राम
वृक्षों, पर्वतों से पूछते, अपने दुर्भाग्य से जूझते
अब उन्हें सोने का मृग नहीं चाहिए
उन्हें सीता चहिए

जंगल में गूँज रहा है, रावण का अट्टहास
रावण के हाथों पड़ सीता कर रही हैं विलाप
अब उन्हें सोने का मृग नहीं चाहिए,
अब उन्हें राम चाहिए.

राम को सीता चाहिए,
सीता को राम चाहिए
सोने के मृग के बिना भी
सुखी था उनका जीवन
आपको क्या चाहिए?

स्नेह ठाकुर का रचना संसार

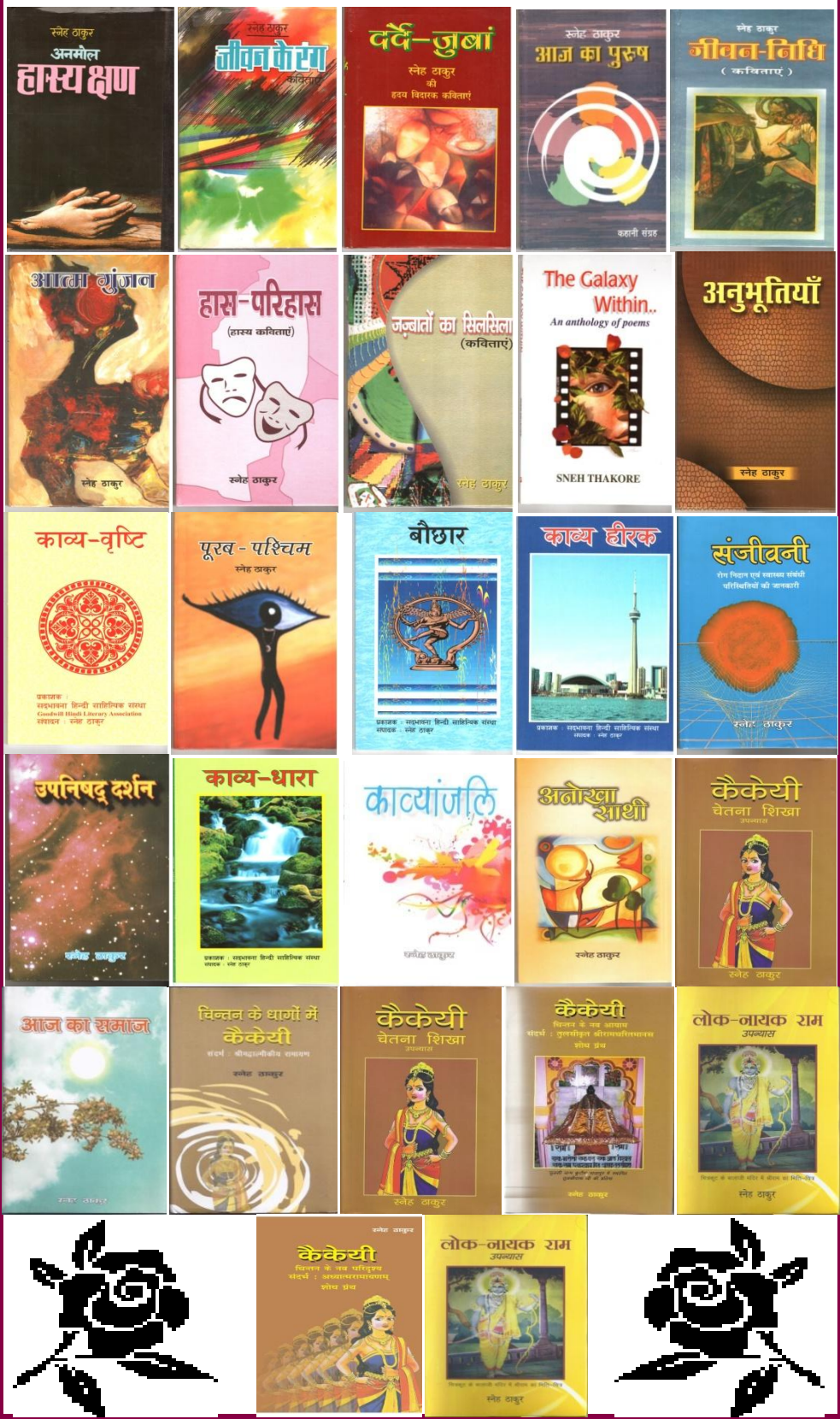

स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आत्म-गुंजन	(आध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
हास-परिहास	(हास्य कविताए)
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	(A collection of English poems)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन एवं संपादन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
बौछार	(संकलन एवं संपादन)
काव्य हीरक	(संकलन एवं संपादन)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी लेख)
उपनिषद दर्शन	(अध्यात्मिक)
काव्य-धारा	(संकलन एवं संपादन)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, राष्ट्रपति भवन पुस्तकालय में संग्रहित)
आज का समाज	(लेख-संग्रह)
चिन्तन के धागों में कैकेयी - संदर्भ : श्रीमदवाल्मीकीय रामायण (शोध-ग्रन्थ)	
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, द्वितीय संस्करण)
कैकेयी : चिन्तन के नव आयाम - संदर्भ : तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस (शोध-ग्रन्थ)	
लोक-नायक राम	(उपन्यास)
कैकेयी : चिन्तन के नव परिदृश्य - संदर्भ : अध्यात्मरामायण (शोध-ग्रन्थ)	
लोक-नायक राम	(उपन्यास, द्वितीय संस्करण)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२
भारत
Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW
England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित